Chapter-3

अध्याय-३

हिन्दी के प्रमुख पत्र-लेखक,

उनका पत्र-साहित्य और

पत्रों में प्रतिबिम्बित उनका व्यक्तित्व

अध्याय-३

हिन्दी के प्रमुख पत्र-लेखक, उनका पत्र-साहित्य और पत्रों में प्रतिबिम्बित उनका व्यक्तित्व

पत्र-साहित्य और व्यक्तित्व :

साहित्य वैयक्तिक अनुभूतियों के आधार पर प्रतिष्ठित होता है । महान् व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति ही महान् साहित्य है।[१] साहित्य के कुछ ऐसे प्रकार हैं जहां लेखक प्रत्यक्ष न आकर अप्रत्यक्ष रूप से अपने पात्रों के माध्यम से हमारे सम्मुख उपस्थित होता है । परन्तु आत्मकथा, निबन्ध इत्यादि साहित्य के ऐसे प्रकार हैं जिनमें लेखक का व्यक्तित्व प्रत्यक्षरूप से प्रकट होता है । पत्र-साहित्य भी प्रत्यक्ष आत्माभिव्यंजक साहित्य का एक प्रकार है । जो लोग अपने जीवन में "दुहरे व्यक्तित्व" के अभ्यासी हैं, उनके पत्रों में बनावटीपन हो सकता है, किन्तु सहज स्वभाव से लिखे गये पत्रों में लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से फलकता है । इस दृष्टि से व्यक्ति का जितना निखरा हुआ चित्र उसके पत्रों में प्राप्त होता है उतना उसकी अन्य किसी रचना अथवा मौखिक वार्तालाप में नहीं होता । अत: किसी व्यक्ति-विशेष के अध्ययन के लिए उसके पत्रों का अध्ययन अनिवार्य है ।

व्यक्तित्व की परिभाषा :

व्यक्तित्व का मतलब होता है व्यक्ति का भाव ।" वस्तुत: "व्यक्तित्व" "व्यक्ति" की भाववाचक संज्ञा है, अत: व्यक्ति के क्षेत्र में जिन-जिन गुणों एवं विशेषताओं का समावेश होता है वे सब "व्यक्तित्व"

---

१ " The work of so and so is good because it is the perfect expression of his personality."

- Sir Arthur Quiller Couch.

(उद्धृत : "समीक्षा-शास्त्र" (प्र०सं०), डा० दशरथ ओझा, पृ० ३६ ।)

के अन्तर्गत भी ली जा सकती है ।[१] यह शब्द प्राय: किसी व्यक्ति की वेश-भूषा तथा शारीरिक विशेषताओं के अर्थ में प्रयुक्त होता है, परन्तु यह अर्थ बहुत संकुचित और एकपक्षीय है । डा० सत्येन्द्र ने व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "मनुष्य का समस्त स्वरूप ही वस्तुत: उसका व्यक्तित्व है । उसके गुण-अवगुण, उसका चरित्र, उसके आचार-व्यवहार, उसका स्वभाव, उसका आंतरिक मन, उसकी संस्कृति अथवा सांस्कृतिक उपार्जन इन सब की एक ऐसी रसायन प्रस्तुत होती है कि वह उस व्यक्ति के स्वरूप को एक पृथक् महत्व प्रदान कर सकती है ।"[२] "दी-मेकिंग आफ ए हेल्थी पर्सनैल्टी" शीर्षक अंग्रेजी पुस्तक में भी व्यक्तित्व से यही अभिप्राय प्रकट किया गया है । उसमें कहा गया है कि "व्यक्तित्व से हमारा तात्पर्य है सोचना, अनुभव करना, व्यक्तियों से आचार-व्यवहार जोकि एक आवश्यक भाग है जिससे वह अपने आपको खूब विचार करता है एवं जो एक व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों से पृथक् करता है ।"[३]

इससे स्पष्ट होता है कि व्यक्तित्व के मुख्य दो पक्ष हैं - (१) शारीरिक पक्ष- जिसके अन्तर्गत व्यक्ति के शरीर की लम्बाई, चौड़ाई, वज़न, गठन, आवाज़, चहेरे की अभिव्यक्ति, रंग आदि अनेक बातें सम्मिलित हैं और (२) मानसिक पक्ष - जिसमें ज्ञान, इच्छा और क्रिया का समावेश होता है । "चरित्र" का सम्बन्ध भी मानसिक पक्ष से होता है ।

---

१ "साहित्य-शैली के सिद्धान्त" (१९७१),
डा० गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ० ३७-३८ ।

२ "समीक्षा के सिद्धांत" (१९६८), पृ० ३१ ।

3 " The Making of a Healthy Personality,"
by Heleyn Leland Witmer Ruth Kotinsty, P. 3.
" We mean by personality the thinking, feeling, acting human being, who for the most part conceives of himself as an indidual separate from other individuals and objects."

(उद्धृत: "आधुनिक हिन्दी का जीवनी परक साहित्य",
डा० शांति खन्ना, पृ० २०)

पत्रों में प्रतिबिम्बित लेखक के व्यक्तित्व का स्वरूप :

पत्र-साहित्य में मुख्यतया लेखक की भावनाओं और विचार-धाराओं, मनोवृत्तियों और आकांक्षाओं, सफलताओं और असफलताओं आदि का ही चित्रण होता है ।[1] अत: इसमें लेखक के व्यक्तित्व के शारीरिक पक्ष की अपेक्षा मानसिक पक्ष का उद्घाटन अधिक होता है । इसके साथ ही, लेखक के जीवन-चरित से सम्बन्धित तथ्यों- जैसे, उसकी शिक्षा-दीक्षा, पारिवारिक स्थिति, कार्यक्षेत्र, कष्ट और यातनाएं, सम्मान पुरस्कार आदि की झलक भी पत्रों में मिलती है । इन तथ्यों का सम्बन्ध भी उसके व्यक्तित्व से होता है । लेखक की जीवनी लिखने के लिए इन तथ्यों से अन्यतम सहायता मिलती है । इस प्रकार पत्रों में प्रतिबिम्बित लेखक के व्यक्तित्व का परिचय हमें मुख्यत: तीन रूपों में प्राप्त होता है:- (क) जीवनी - विषयक तथ्यों या सूत्रों के रूप में, (ख) चारित्रिक विशेषताएँ या गुण-दोष के रूप में और (ग) दृष्टिकोण या विचारधारा के रूप में । अब हम इन्हीं रूपों को ध्यान में रखकर साहित्यिक तथा साहित्येतर क्षेत्रों के प्रमुख पत्र-लेखकों के व्यक्तित्व का अध्ययन करेंगे ।

(अ) साहित्यिक क्षेत्र के प्रमुख पत्र-लेखक

साहित्यकार सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील और भावुक होता है । उसमें निरीक्षण की शक्ति, भावना की तीव्रता, विविध अनुभवों तथा मानसिक चित्रों को एकत्र करके नवीन रूप में प्रस्तुत करने की क्षमता- ये सभी असाधारण मात्रा में विद्यमान रहते हैं । यही कारण है कि उसके पत्र अपेक्षाकृत अधिक रोचक, आकर्षक और प्रभावोत्पादक होते हैं ।

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, कवि या लेखक जिन उद्गारों को कविताओं और निबन्धों में व्यक्त नहीं करते या कर पाते, उन्हें वे अपने पत्रों में अवश्य प्रकट करते हैं । अत: उनके वास्तविक व्यक्तित्व या प्रकृत चरित्र को जानने के लिए उनके पत्र सर्वाधिक सबल साधन हैं । डा० - विश्वनाथ शुक्ल के शब्दों में कहें तो "किसी साहित्य को जहां किसी

---

१ प्रत्येक मनुष्य की आत्मगत दुर्बलताएं मित्रों, स्नेहियों और घनिष्ठ परिचितों को लिखे गये पत्रों में ही मिलती हैं । -
-डॉ०गोविन्द त्रिगुणायत, शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत-२,पृ० ५१३ ।

विशिष्ट विधा के साहित्यसर्जन में एक आभिजात्य मर्यादा का पालन करना होता है, वहां पत्र-लेखन उसका एक ऐसा निभृत कक्ष है, एक ऐसा स्वच्छन्द और उन्मुक्त मनोराज्य है, जहां का वह एक मात्र स्वामी और एकछत्र सम्राट होता है। इसलिए यदि किसी व्यक्ति को हम उसके मुक्त और सहज रूप में देखना चाहें तो उसके पत्रों में देख सकते हैं।[1]

कवि या साहित्यकार के व्यक्तित्व और चरित्र को लेकर विद्वानों ने अलग-अलग विचार प्रकट किये हैं। डा० रामरतन भटनागर ने इस सम्बन्ध में लिखा है: "व्यक्तित्व चरित्र का उदात्तीकृत रूप है जो आत्मिक गुणों का प्रकटीकरण है। - - - - कवि कालिदास व्यक्ति कालिदास से भिन्न भी हो सकता है और समरूप भी, परन्तु उनकी कृतियों में हम व्यक्ति कालिदास का ही आग्रह क्यों करें?[2] कवि कालिदास की कृतियों में हम व्यक्ति कालिदास का आग्रह करें या न करें, यह अलग बात है, परन्तु यह निर्विवाद है कि व्यक्ति कालिदास को समझे बिना कवि कालिदास का अध्ययन अपूर्ण रहेगा। कवि के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में बाबू गुलाब राय का यह मत है कि - "वास्तव में कवि के दो व्यक्तित्व होते हैं - एक लौकिक और दूसरा साधारणीकृत सहानुभूतिपूर्ण कलाकार का व्यक्तित्व। इसके अतिरिक्त उसका (भावक का) तीसरा व्यक्तित्व भी होता है।"[3] पत्रों में हमें साहित्यकार के इन तीनों व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। पत्रों में उसका लौकिक व्यक्तित्व वहां प्रकट होता है, जहां वह साधारण मनुष्यों की भांति सुख में हंसता है और दुःख में रोता है, उसके कलाकार का व्यक्तित्व वहां झलकता है, जहां उसके रोने में भी एक सुरीला राग सुनाई देता है तथा उसका भावक वहां दृष्टिगोचर होता है, जहां वह अपनी तथा अपने मित्रों की कृतियों की व्याख्या करता है। इस प्रकार साहित्यकारों के पत्रों में उनके व्यक्तित्व का जो परिचय मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। अब यहां हम कालक्रमानुसार साहित्यिक क्षेत्र के उन प्रमुख पत्र-लेखकों की विस्तार से चर्चा करेंगे जिनका संक्षिप्त परिचय पिछले अध्याय में दिया जा चुका है।

---

१ "हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास," चतुर्दश भाग, (सं०२०२७ वि०), संपा० डा० हरवंशलाल शर्मा, पृ० ५०६ ।

२ "मूल्य और मूल्यांकन" (१९६२), पृ० ९२-९२ ।

३ "सिद्धान्त और अध्ययन" (१९७०), पृ० २११ ।

१ - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०-१८८५) :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी के प्रवर्तक हैं । उन्हीं की प्रेरणा से रीतिकालीन प्रवृत्तियों का अवसान या संस्कार होकर नूतन परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ । "निज भाषा की उन्नति अहै सब उन्नति को मूल" का सूत्र अपनाकर उन्होंने हिन्दी की उन्नति और प्रगति के लिए सतत परिश्रम और प्रयास किया । साहित्य का मन्दिर इस प्रतिभासम्पन्न साधक के गद्य के अगरू-धूम से महक उठा । श्री किशोरीलाल गुप्त ने अपने "भारतेन्दु और उनके पूर्ववर्ती कवि" शीर्षक लेख में इस महान् कलाकार की साहित्य-साधना का परिचय देते हुए लिखा है कि- "भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र की गणना सर्वदा विलक्षण एवं मौलिक प्रतिभाशाली रचनाकारों में की जायगी । अपने कार्यव्यस्त अल्प जीवन में समाज और कुटुम्बकृत निन्दा और विरोध, शासन की कोपदृष्टि तथा अर्थाभावजन्य कष्टों को सहन करते हुए भी जिसने १७-१८ वर्षों के भीतर उतनी रचनाएं प्रस्तुत कीं जितनी प्रस्तुत करने में साधारणत: किसी बड़े कवि या लेखक को ५०-६० वर्ष से कम न लगते, जिसकी प्रत्येक बात में कुछ न कुछ अनूठापन रहता था और जिसमें स्वाभिमान की मात्रा भी कुछ कम नहीं थी ।"[१] इस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र साहित्यिक क्षेत्र में आधुनिकता के प्रथम अग्रदूत थे ।

भारतेन्दु जी का पत्र-साहित्य :

हिन्दी में पत्र-साहित्य के विकास के विवेचन के प्रसंग में हम देख चुके हैं कि - साहित्य के अन्य क्षेत्रों के समान पत्र-लेखन के क्षेत्र में भी सर्वप्रथम नवीनता लाने का प्रयास भारतेन्दु जी ने ही किया है । उन्होंने प्राचीनकाल से चली आ रही परम्परागत पत्र-लेखन शैली को नया रूप प्रदान किया और हिन्दी में नये चाल के पत्र उन्होंने ही चलाये । पत्र-लेखनकला सम्बन्धी उनकी गहरी सूझ-बूझ का परिचय हमें उनकी " प्रशस्तिसंग्रह अथवा

---

१ "नागरी प्रचारिणी पत्रिका", भारतेन्दु जन्मशती अंक, सं० २००७ वि०, पृ० २१ ।

पत्र-बोध " शीर्षक पुस्तक में प्राप्त होता है । उन्होंने स्वयं सैंकड़ों पत्र लिखे और अपने सहयोगी साहित्यिकों को भी इस दिशा में प्रेरित किया । साहित्यिक पत्रों का शुभारम्भ भी उन्होंने ही किया । इसलिए हम उनको "हिन्दी का सर्वप्रथम पत्र-लेखक " कह सकते हैं ।

भारतेन्दु जी का कार्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक था और उनकी लेखन-शक्ति अद्भुत थी । उनकी क़लम कभी न रुकती । डा० राजेन्द्रलाल मित्र उनको "राइटिंग मशीन" (Writing Machine)कहा करते थे ।[१] उनके द्वारा लिखे गये सैंकड़ों पत्र यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं । उनके अनेक अप्रकाशित पत्र भारतकला भवन, बनारस में संरक्षित हैं । खेद का विषय है कि इस महान् पत्र-लेखक के पत्रों का कोई स्वतंत्र संग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं है । उनके कुछ महत्वपूर्ण पत्र उन पर लिखे गये जीवन-चरित्रों में प्रकाशित हैं । कुछ पत्र उनके सहयोगी साहित्यकारों पर लिखे गये शोध-प्रबन्धों के परिशिष्टों में प्राप्त होते हैं । उनके प्रकाशित पत्र-साहित्य का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैं :-

१- भारतेन्दु ग्रंथावली भाग-३, संपा० व्रजरत्नदास ।

इसमें भारतेन्दु जी द्वारा राधाचरण गोस्वामी को लिखे गये २० बहुमूल्य पत्र संकलित हैं । "प्रेमघन" जी के नाम लिखे गये दो पत्र भी इसमें दिये गये हैं ।

२ - हरिश्चन्द्र - ले० बाबू शिवनन्दन सहाय ।

इस प्रसिद्ध जीवन-चरित-ग्रंथ के उपसंहार में "कई एक चिट्ठी-पत्री" शीर्षक के अन्तर्गत भारतेन्दु जी को लिखे गये तथा उनके द्वारा लिखे गये कई मूल्यवान पत्र प्रकाशित हैं ।

३ - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - ले० व्रजरत्नदास ।

इस जीवनी के परिशिष्ट-अ में "पत्र-व्यवहार" शीर्षक के अन्तर्गत भारतेन्दु जी का अनेक साहित्यकारों तथा अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों के साथ हुआ पत्र-व्यवहार संकलित है ।

४ - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - ले० मदनगोपाल ।

इस जीवन-चरित के अनेक प्रकरणों में प्रसंगत: भारतेन्दुजी के महत्वपूर्ण पत्र उद्धृत किये गये हैं ।

----

१ "राधाकृष्ण ग्रंथावली "(१९३०), संपा० श्यामसुन्दरदास, पृ० ३९० ।

५ - प्रेमघन और उनका कृतित्व - डा० रामचन्द्र पुरोहित ।

इस शोध-प्रबन्ध के परिशिष्ट-२ में "प्रेमघन" जी के नाम लिखे गये भारतेन्दु जी के छह मैत्रीपूर्ण पत्र प्रकाशित हैं ।

इसके अतिरिक्त "सम्मेलन पत्रिका" के भारतेन्दु-अंक, "ज्ञानोदय" के पत्रांक आदि में भी अनेक कई पत्र प्रकाशित किये गये हैं । इस प्रकार "द्विवेदी- पत्रावली" के समान भारतेन्दु-पत्रावली का प्रकाशन भी हो सकता है । भारतेन्दु जी का पत्र-साहित्य भी कम रंजक या महत्वपूर्ण नहीं है ।

पत्रों में प्रतिबिम्बित भारतेन्दु जी का व्यक्तित्व :

भारतेन्दु जी का व्यक्तित्व एक सच्चे कलाकार का व्यक्तित्व था । "कलाकार की कला यदि जीवन से न फूटे तो उसे शब्द, मूर्ति तथा भंकार में खोजना व्यर्थ है । हृदय का धनी ही साहित्य का धनी हो सकेगा । भारतेन्दु हृदय के धनी थे । एक ऐसा हृदय विधाता की म भूल से उन्हें मिल गया था जिसके सम्मुख सम्भवत: समस्त विश्व-याचना सनाथ हो सकती थी ।"[१] भारतेन्दु जी के पत्रों में उनका कलात्मक व्यक्तित्व स्पष्टरूप से भलकता है ।

(क) जीवनी-सूत्र :

भारतेन्दु जी के पत्रों में हमें उनके जीवन के अनेक प्रसंगों का रोचक वर्णन प्राप्त होता है । कुछ महत्वपूर्ण प्रसंगों की यहां हम भांकी प्रस्तुत करते हैं ।

१ - उत्तर भारत की यात्रा पर :

जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं, सन् १८५७ के स्वतंत्रता-संग्राम में भारतीयों की हार के बाद अंग्रेजों की सत्ता यहां अच्छीतरह स्थापित हो गयी थी । इस व्यवस्था का एक प्रतीक था यातायात के नये साधन । भारतेन्दु जी उन साहित्यिकों तथा विचारकों में अग्रतम थे जिन्हों ने यातायात

---

१ "भारतेन्दु का व्यक्तित्व" (लेख), प्रकाशचन्द्र वर्मा, "साहित्य-सन्देश", नवम्बर १९५२, पृ० १८३ ।

के नये साधनों का पूरा लाभ उठाया । वे सन् १८७१ ई० के आरम्भ में उत्तर भारत की यात्रा पर निकले । इस यात्रा में उन्होंने कई रोचक पत्र लिखे । उनके यात्रा-वृत्त से सम्बन्धित कुछ पत्र छद्म नाम से "कविवचनसुधा" में भी प्रकाशित हुए हैं । उक्त पत्रिका में "सम्पादक के नाम पत्र" शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित पत्र वस्तुत: भारतेन्दु जी द्वारा ही लिखे गये थे । इस विषय में डा० ब्रजकिशोर पाठक का यह मत उद्धरणीय है कि- "कविवचन-सुधा" के सम्पादक के पास उक्त पत्र छद्म नाम से भेजने का अर्थ यही है कि उसके लेखक भारतेन्दु थे, चूंकि उक्त पत्रिका के सम्पादक स्वयं भारतेन्दु थे और अपने ही नाम से अगर वह पत्र प्रकाशित करते तो शैली में विशेषता नहीं आती ।"[1] इस प्रकार ये पत्र भारतेन्दु जी की पर्यटन-प्रियता के परिचायक हैं ।

कुछ भारतीय रजवाड़ों के प्रति भारतेन्दु जी की पूरी श्रद्धा थी । उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह हिन्दी प्रेमी थे । वे भारतेन्दु जी के आश्रय प्रशंसक ही नहीं, उनसे उनका परिचय भी था । सन् १८८२ ई० में उदयपुर की यात्रा के समय ~~न~~ भारतेन्दु जी ने उनको एक पद्य-पत्र लिखा था जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियां इस प्रकार थीं :-

> "श्रीचरणयुगल सरसीरुहेषु निवेदनम्
> कह्यो वृत्त सब आज को, पंडा जू समझाय ।
> जल पयान सह श्रीचरन, दरसन हेतु उपाय ।"[2]

२ - रुग्णावस्था :

उदयपुर की यात्रा में भारतेन्दु बुरीतरह बीमार पड़ गये । श्वास, खांसी, तथा ज्वर तीनों प्रबल हो उठे । फिर उन्हें हैजा भी हो गया । शरीर ऐंठने लगा । बच तो गये, परन्तु शरीर बहुत कमजोर हो गया । इसी निराशा की स्थिति में उन्होंने अपने छोटे भाई गोकुलचन्द्र को जो पत्र लिख भेजा था, वह उनके जीवन और व्यक्तित्व के कई महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डालता है । इस पत्र के कुछ अंश यहां हम उद्धृत करते हैं:-

---

१ "भारतेन्दु की गद्यभाषा" (प्र०सं०), पृ० ३३ ।

२ "हरिश्चन्द्र" (द्वि०सं० १९७५), बाबू शिवनन्दन सहाय, पृ० ५७ ।

" विदेश से हम लौटकर न आवें तो इस बात का जो हम यहां लिखते हैं ध्यान रखना । ध्यान क्या अपने पर फर्ज समझना । किन्तु हम जल्दी जीते जागते फिरेंगे । कोई चिन्ता नहीं है । सिर्फ संयोग के वश होकर लिखा है । यदि ऐसा हो तो दो चार बातों का अवश्य ध्यान रखना ।

- - - -

दो बात की हमको चिन्ता है । प्रथम कर्ज, दूसरी मल्लिका की रक्षा । थोड़ी सी डिगरी जो बच गई है, उसको चुका देना । और जीवन भर दीन हीन मल्लिका की, जिसको हमने धर्मपूर्वक अपनाया है, रक्षा करना । कृष्ण को ऊंची शिक्षा संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला की हो । जो ग्रंथ हमारे या बाबूजी के बेछपे रह जांय वे छपें ।"[1]

इस पत्र में भारतेन्दु जी का भावुककिन्तु कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व साकार हो उठा है । कर्ज चुका देने के साथ वे मल्लिका की रक्षा पर भी जोर देते हैं । इससे स्पष्ट होता है कि उनकी रसिकता उत्तरदायित्व एवं स्नेहशून्य भोग-लालसा मात्र न थी । वे अपनी संतति के साथ-साथ मानस-संतति के भविष्य के लिए भी कितने सजग थे, इस बात का प्रमाण भी इस पत्र से मिलता है ।

३ - पारिवारिक सम्बन्ध :

अपने छोटे भाई के नाम लिखे ऊपर के पत्र से पता चलता है कि भारतेन्दु का अपने परिजनों से अच्छा सम्बन्ध था । उक्त पत्र में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है कि "यह तुम जानते होकि तुम्हारी भाभी की हमको कुछ चिन्ता नहीं,[2] क्योंकि तुम्हारे ऐसा देवर जिनका वर्तमान है उसको और क्या चाहिए ।" इससे स्पष्ट है कि गोकुलचन्द्र के प्रति उनके मनमें अपार स्नेह था ।

अपने फुफेरे भाई राधाकृष्णदास के साथ भी भारतेन्दु जी का हार्दिक सम्बन्ध था । वे उनको " बच्चा " के प्यार-भरे नाम से पुकारते थे । "नीलादेवी " नाटक की प्रति-

---

१. " भारतेन्दु हरिश्चन्द्र " (१९७६), मदनगोपाल, पृ० १२८ ।
२. - वही - ।

भेजने के लिए उन्होंने राधाकृष्णदास को कविता में एक स्नेहपूर्ण पत्र लिखा था। इस पत्र की प्रारम्भिक चार पंक्तियां यहां उद्धृत की जाती है :-

"अज़ीज अजु जान मन बच्चा बहादुर ।
मेरे दिल के सदफ़ के वे बहादुर ॥
बहुत ही जल्द भेजो नीलादेवी ।
इसी दम चाहिए इक उसकी कापी ॥"[1]

यह पत्र जहां दोनों भाइयों के प्रेमपूर्ण सम्बन्ध पर प्रकाश डालता है, वहां भारतेन्दु जी की पत्र-शैली और उनकी भाषा के रूप को भी प्रकट करता है। इस प्रकार भारतेन्दु जी के पत्रों में उनके जीवन-चरित के अनेक सूत्र उपलब्ध होते हैं।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

इष्ट-मित्रों और सगे-सम्बन्धियों को लिखे गये निजीपत्रों में लेखक के हृदय का वास्तविक चित्र अंकित होता है। भारतेन्दु जी द्वारा बदरीनारायण चौधरी "प्रेमघन", राधाचरण गोस्वामी आदि मित्रों को लिखे गये पत्रों में उनके चरित्र की अनेक विशेषताओं का उद्घाटन हुआ है।

१ - रसिकता :

भारतेन्दु जी एक रंगीन तबीअत के व्यक्ति थे। "चाहिबे की चाह" की अतृप्ति के कारण उनका मन असली या नकली तृप्ति के लिए व्याकुल रहता था। उनके दरबार में चमेली जान आदि वेश्याएं हाजिरी भी देती थीं। वेश्याओं की अंधेरी नगरी में ही उन्हें अपनी कविसुलभ सहृदयता के कारण माधवी-सा माधवी पुष्प प्राप्त हुआ।[2] उन्होंने उसके लिए एक मकान भी मोल लेकर रखा था। वे कई बार वहीं ठहरते भी थे। इस सम्बन्ध में "प्रेमघन" जी के नाम लिखा उनका एक पत्र मिला है। यह एक गोपनीय घटना से सम्बद्ध है। इससे भारतेन्दु जी के चरित्र की स्पष्ट झलक मिलती है, इसलिए उसका प्रारम्भिक अंश यहां हम प्रस्तुत करते हैं:-

---

१ "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र" (१९६२), ब्रजरत्नदास, पृ० २९६ ।

२ "भारतेन्दु के विचार: एक पुनर्विचार" (१९७७), डा० चन्द्रभानु सोनवणे पृ० ९ ।

" प्रिय !

एक गुप्त बात है । इसमें बड़ी सावधानी से सहायता कर दीजिएगा । गोवर्धनदास रोडा उर्फ खरदूसनदास से इन दिनों माधवी से बिगाड़ हो गया है । वह चित्त का ऐसा कुनरी है कि उस बिगाड़ का बदला यों लेना चाहता है कि माधवी की एक क़िता हुंडी २३००)रु०की जो वास्तव में माधवी के रुपये की है मगर उसके नाम की है उसको हजम किया चाहता है । - - - - "[1]

इस प्रकार यह पत्र भारतेन्दुजी की रसिकता और "प्रेमघन" जी से उनकी आत्मीयता का द्योतक है । इसी रसिकता के कारण ही भारतेन्दु जी को "चन्द्रिका" अर्थात् मल्लिका से तादात्म्य प्राप्त हुआ था । मल्लिका के प्रति उनके मन में कितना प्रेम था, इसका संकेत हमें गोकुलचन्द्र को प्रेषित उनके पूर्वोद्धृत पत्र में मिलता है । इसके अतिरिक्त मल्लिका द्वारा भारतेन्दु के नाम लिखे गये पत्रों से भी प्रकट होता है कि इन दोनों[2] के बीच अनन्य प्रेमसम्बन्ध था । ये पत्र "ज्ञानोदय" के पत्र-परिशिष्टांक में प्रकाशित हुए हैं ।

२ - आर्थिक संकट और ऋण :

भारतेन्दु जी एक रसिक, रंगीन और शौहे-दिल व्यक्ति थे । अपनी रसिकता और उदारता के कारण अनेक बार वे आर्थिक संकट में फंस जाते थे और ऋण लेने की नौबत आ जाती थी । "प्रेमघन" जी उनके निकटतम सहयोगियों में से थे । अत: उनके पास भेजे गये पत्रों में भारतेन्दु के आर्थिक संकट का विशद विवरण प्राप्त होता है । चैत्रकृष्णा १२ सं० १९३३ वि० को लिखे पत्र का यह अंश देखिए -

"मेरे प्यारे। हाथ थर्राते हैं, लिखा नहीं जाता । आप कृपापूर्वक २००) मुझे उधार दीजिए इसके बदले हमारे जीवन में सबसे बेशकीमत

---

१ "प्रेमघन और उनका कृतित्व"(१९७६), परिशिष्ट-२, पृ० १३ ।

२ " देखिए: "भारतेन्दु के नाम मल्लिका की प्रणय-पातियां",
प्रस्तुतकर्ता लक्ष्मीशंकर व्यास, "ज्ञानोदय", दिसम्बर १९६३, पृ०१४५।

चीज़ ईमान को आप रेहन रखिए । ईश्वरेच्छानुकूल है तो २० व ३० दिन ही मैं मैं लौटा दूंगा । न जाने किस संकट से और क्या सोचकर आपको लिखा है । एक लिखा १००० जानिएगा विलम्ब तनिक मत कीजिएगा प्राण संकट में हैं । इस मनुष्य से कुछ मत पूछिएगा । मैं छिपा हुआ दुःखी हूं । बस बहुत नहीं लिख सकता । हाय ! यह दिन भी आये ! खैर"[1]

इस पत्र में शाहखर्च भारतेन्दु जी का कवि-हृदय मूर्तिमन्त हो उठा है ।

३ - हिन्दी की उन्नति के लिए सतत चिन्ता :

भारतेन्दु जी हिन्दी की उन्नति के लिए सतत चिन्तित रहते थे । वे यह भी चाहते थे कि हिन्दी राजभाषा हो । उन्हों ने इसके लिए आन्दोलन भी चलाया था । इसी कारण राजा शिवप्रसाद "सितारे हिन्द" से उनका मतभेद हो गया था । राजा साहब शुद्ध हिन्दी का विरोधकर उसमें फारसी का मिश्रण कर रहे थे । अपने आन्दोलन के लिए भारतेन्दु जी को सरकार के कोप का भाजन भी बनना पड़ा । अपने एक कलकत्ता-निवासी मित्र के नाम लिखे पत्र में वे महाराजा कुमार रामदीनसिंह और अपने हिन्दी-प्रेम के सम्बन्ध में लिखते हैं -" - - - परन्तु ईश्वर का धन्यवाद है कि उसने इतने दिनों के बाद एक सच्चा प्रेमी मिला दिया जो कि हिन्दी के लिए बड़े व्यग्र हैं और हिन्दी की उन्नति के लिए ठीक मेरी तरह तन, मन, धन श्रीकृष्णार्पण करने को कटिबद्ध हैं ।"[2]

इससे स्पष्ट होता है कि भारतेन्दु जी ने हिन्दी की उन्नति के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था । राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए बहुत उपयुक्त लिखा है :

" कौन कहता है कि कितना काम किया है ।
हिन्दी पर सर्वस्व इन्होंने वार दिया है ।"[3]

---

१ " प्रेमघन और उनका कृतित्व "(१९७६), परिशिष्ट-२ पृ० १४-१५ ।

२ " भारतेन्दु हरिश्चन्द्र " (१९७६), मदन गोपाल, पृ० १३९ ।

३ " नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भारतेन्दु-जन्मशतीअंक, सं० २००७वि० पृ० १ ।

४ - अध्ययन शीलता और जिज्ञासा :

भारतेन्दु जी एक अध्ययनशील और जिज्ञासु साहित्यकार थे । जिस विषय पर कुछ लिखना चाहते थे, उसका पहले पूरी तरह अध्ययन कर लेते थे और उस विषय के अधिकारी विद्वानों के पास पत्र भेजकर आवश्यक जानकारी एकत्र कर लेते थे । महाप्रभु चैतन्य पर नाटक लिखने से पहले उन्होंने महाप्रभु के जीवन-चरित का गहराई से अध्ययन किया था और इस सम्बन्ध में राधाचरण गोस्वामी से विस्तृत पत्र-व्यवहार भी किया था ।[1] इस प्रकार वे एक सच्चे साहित्य-साधक थे ।

(ग) दृष्टिकोण अथवा विचारधारा:

भारतेन्दु जी पुष्टिमार्गी कृष्णभक्त थे । उन्हें अपने कृष्ण में अनन्य प्रेम था । अपने नये चाल के पत्रों पर उन्होंनेजो "सिद्धान्त-वाक्य"-(Motto) छपवाये थे, वे उनकी प्रेम लक्षणा भक्ति के परिचायक हैं । ये सिद्धान्त-वाक्य हैं :

१- " यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जय ।"

२- " भक्त्या त्वनन्ययालभ्यो हरिरन्यद्विडम्बनम् ।"

३- " लव इज् हैवन एण्ड हैवन इज् लव " ।
(Love is heaven and heaven is Love.)[2]

श्री राधाचरण गोस्वामी के नाम लिखे एक पत्र में उपर्युक्त तीन सिद्धान्त-वाक्यों में से अंतिम दोनों वाक्य मुद्रित हैं ।[3]

---

१ देखिए: " भारतेन्दु - ग्रंथावली भाग - ३ " (सं० २०१० वि०), पृ० ६७३-७४ ।

२ "प्रशस्ति-संग्रह", भारतकला भवन, काशी में सुरक्षित टंकित प्रति , पृ० ८ ।

३ " भारतेन्दु-ग्रंथावली भाग-३ ", पृ० ६७२ ।

जहां तक भाषा-नीति का सम्बन्ध है, हम देख चुके हैं कि भारतेन्दु जी का अरबी-फारसी बहुला हिन्दी से विरोध था । वे उसकी मूल भारतीय प्रवृत्ति की रक्षा करते हुए उदारतापूर्वक अत्यन्त प्रचलित अरबी-फारसी शब्दों को ही नहीं, अंग्रेजी आदि के शब्दों को भी पचा लेने के पक्ष में थे । वे राष्ट्रीय दृष्टिकोण से सोचते और लिखते थे ।

जिस प्रकार भारतेन्दु जी के व्यक्तित्व में कहीं कृत्रिमता नहीं है, उसी प्रकार उनकी पत्र-शैली में भी कहीं कृत्रिमता नहीं है । हां, कथ्य के अनुरूप कथन के ढंग में अन्तर अवश्य मिलता है । जैसे, छोटे भाई गोकुलचन्द्र को लिखे पत्र और फुफेरे भाई राधाकृष्णदास को लिखे पत्र की शैलियां भिन्न-भिन्न हैं। एक मृत्यु की निकटता का अनुभव करते हुए लिखा गया है और दूसरा हर्षोल्लास में । इसी प्रकार "प्रेमघन" जी के नाम लिखे गये पत्रों में आत्मीयता एवं मैत्री-भावना की स्पष्ट झलक मिलती है । "प्रेमघन" जी भारतेन्दु जी के इतने निकट थे कि पत्रों में उनके प्रति अभिवादन की भारतेन्दु जी ने आवश्यकता ही नहीं समझी है । उनके प्रति पत्रों में प्रयुक्त सम्बोधन - जैसे, "प्रिय", "मित्रवर", "प्रिय-मित्रवर" आदि - संक्षिप्त और आपसी सम्बन्ध के अनुरूप हैं । इसके विपरीत राधाचरण गोस्वामी को वे आदरभाव की दृष्टि से देखते थे । एक पत्र में उन्हों ने लिखा भी है -" अलौकिक और लौकिक दोनों सम्बन्ध से हमारे आप पूज्य हैं ।"[1] अत: उनको लिखे गये पत्रों में "महोदयेषु", "प्रिय पूज्य चरणेषु" आदि सम्बोधनों के साथ "अनेक कोटि सष्टांग दण्डवत् "प्रणाम" आदि अभिवादन के शब्द भी मिलते हैं । इससे प्रकट होता है कि भारतेन्दु जी अपने पत्रों में शिष्टाचार का भी पूरा ध्यान रखते थे । संक्षेप में उनकी पत्र-शैली उनकी प्रतिभा की प्रतीक है । यद्यपि उनके पत्र अभी इधर-उधर बिखरे ही पड़े हैं, तथापि उनमें हिन्दी साहित्य की मूल्यवान सामग्री उपलब्ध होती है । इन पत्रों को एकत्र कर उनके सुव्यवस्थित प्रकाशन से हिन्दी साहित्य के इतिहास की अनेक घटनाओं की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होगी । और हिन्दी के इस महान् सपूत की एक स्थायी स्मृति भी कायम होगी । उनके पत्रों के स्वतंत्र संकलन से सचमुच ही "प्यारे हरिश्चन्द्र की कहानी रह जायेगी ।"

---

१ "भारतेन्दु ग्रंथावली भाग-३", पृ० ६७३ ।

२ - महावीरप्रसाद द्विवेदी (१८६४-१९३८) :

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रथम आचार्य थे । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य का जो पौधा लगाया, उसे पल्लवित-पुष्पित करने का श्रेय आचार्य द्विवेदी को ही है । डा० रामचन्द्र-प्रसाद के शब्दों में "वस्तुत: द्विवेदीजी हिन्दी-साहित्य के वैसे ही शहीद थे, जैसे भारतेन्दु । इन दोनों ने दिन-रात एक कर साहित्य की अथक सेवा की और इसकी इमारत को एक ऐसी सुदृढ़ पीठिका पर कायम करना चाहा, जो युग-युग तक अक्षुण्ण रहे ।"[१] आचार्य द्विवेदी की इस अनवरत सेवा-साधना को लक्षित कर श्री रूपनारायण पाण्डेय ने उनको "ऋषि दधीचि" कहा है ।[२] पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के मतानुसार "वे एक महापुरुष ही नहीं, महामानव भी थे ।"[३] इस प्रकार आचार्य द्विवेदी एक युग-विधायक विभूति थे ।

द्विवेदी जी का पत्र-साहित्य :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समान आचार्य द्विवेदी भी पत्राचार के प्रति अत्यन्त सजग थे, यद्यपि उन्होंने पत्रों की बाहरी सजावट पर ध्यान नहीं दिया है । यहां तक कि पत्र-लेखन के लिए उन्हें पैड की कभी आवश्यकता ही नहीं प्रतीत हुई, साधारण कागद पर ही वे पत्र लिखा करते थे ।[४] वे प्राय: सभी पत्रों का उत्तर स्वयं हाथ से लिखकर ही दिया करते थे । "सरस्वती" से अवकाश ग्रहण करने के बाद उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था, आंखें कमजोर हो गयीं थीं, फिर भी छोटे-बड़े सभी लोगों के पत्रों

---

१ "आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कतृत्व" (१९७७), डा० शैव्या झा, भूमिका ।

२ "आचार्य द्विवेदी" (१९६४), संपादिका निर्मल तालवर, श्रद्धांजलियां

३ "रेखाचित्र" (१९५२), पृ० १२ ।

४ "महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग" (१९५१), डा० उदयभानुसिंह, पृ० ५६ ।

का उत्तर देने के लिए वे तत्पर रहते थे । "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" के "पौराणिकी"[1] स्तम्भ के अन्तर्गत उनको लिखे हुए विभिन्न साहित्यिकों के जो पत्र प्रकाशित हुए हैं, उन्हें देखने से ज्ञात होता है कि वे सभी पत्रों पर नोट और तारीख सहित हस्ताक्षर करते थे । उत्तरित पत्रों पर वे , "रिप्लाइड" लिखकर सुरक्षित रखते थे । इस प्रकार आचार्य द्विवेदी पत्र-साहित्य के महत्व से भली भांति परिचित थे ।

हिन्दी साहित्यकारों में सर्वप्रथम आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के ही पत्र पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं । श्री बैजनाथसिंह "विनोद" द्वारा सम्पादित "द्विवेदी-पत्रावली" में पं० श्रीधर पाठक, बाबू राधाकृष्णदास, पं० पद्मसिंह शर्मा, श्री मैथिलीशरण गुप्त आदि साहित्यकारों के नाम लिखे आचार्य द्विवेदी के १८३ पत्र संकलित हैं । श्री "विनोद" द्वारा सम्पादित" द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र " शीर्षक संग्रह में आचार्य द्विवेदी के कुल मिलाकर ६८ पत्रों का संकलन है जिनमें ४८ पत्र पं० जनार्दन झा " जनसीदन" के नाम, २० ज्वालादत्त शर्मा के नाम, ८ कामताप्रसाद गुरु के नाम, १० बाबू श्यामसुन्दरदास के नाम, ७ पं० बलदेवप्रसाद मिश्र के नाम, ३ श्री राम शर्मा के नाम, ३ श्री हरिभाऊ उपाध्याय के नाम, १ भारतीय के नाम और १ पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम है । आचार्य जी द्वारा महाकवि "निराला" के नाम लिखे गये ६ पत्र "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" में प्रकाशित हैं । इसके अतिरिक्त पं० किशोरीदास वाजपेयी लिखित "आचार्य द्विवेदी और उनके संगी-साथी" तथा निर्मल तालवार द्वारा सम्पादित "आचार्य द्विवेदी" शीर्षक पुस्तकों में भी आचार्य जी के अनेक महत्वपूर्ण पत्र प्राप्त होते हैं ।

पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांकों तथा सामान्य अंकों में भी आचार्य द्विवेदी के कई अनमोल पत्र बिखरे पड़े हैं । पं० पद्मसिंह शर्मा के नाम लिखे उनके सैकड़ों पत्र " भारतीय साहित्य " के पुराने अंकों में देखने को मिलते हैं । " भाषा " के द्विवेदी-स्मृति-अंक में उनका मूल्यवान पत्र-साहित्य सन्दर्भ प्रकाशित हुआ है । पं० श्रीधर पाठक के साथ हुआ उनका विस्तृत

---

१ " देखिए: "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" वर्ष ६६, अंक-१,२,३,४ ।

पत्र-व्यवहार" सम्मेलन पत्रिका" के भाग-५५ (पौष-ज्येष्ठ १८८१) में देखा जा सकता है । इस प्रकार आचार्य द्विवेदी का पत्र-साहित्य बहुत विशाल है । श्री परमात्माशरण बंसल ने उनके पत्र-साहित्य को काल-क्रम की दृष्टि से मुख्य तीन भागों में विभक्त किया है :- (१) १९०३ ई० से पूर्व, (२) १९०३ ई० से १९२० ई० तक (सरस्वती सम्पादन) और (३)-१९२० ई० के पश्चात् ।[१] इन तीनों भागों में सरस्वती-सम्पादन-काल में लिखे गये पत्र विशेष महत्वपूर्ण हैं । इन पत्रों से उनके जीवन के अनेक पक्ष सामने आते हैं ।

पत्रों में प्रतिबिम्बित द्विवेदी जी का व्यक्तित्व :

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के आचार्यत्व की गरिमा से युक्त और विशद व्यक्तित्व का वास्तविक परिचय हमें उनके पत्रों में ही मिलता है । उनके जीवन के अनेक पक्षों का उद्घाटन भी पत्रों में हुआ है ।

(क) जीवनी-सूत्र :

आचार्य द्विवेदी के पत्रों में से अनेक स्थलों पर उनकी जीवन-रेखाएं उभर कर सामने आती हैं । कुछ रेखाओं पर यहां संक्षिप्त प्रकाश डाला जाता है ।

१ - रेलवे की नौकरी :

आचार्य द्विवेदी ने श्रीराम शर्मा के नाम लिखे अपने ४-६-१९३२ के पत्र में अपने पूर्व-व्यवसाय-रेलवे की नौकरी-का विवरण लिख भेजा है । उन्होंने लिखा है :" मैं रेलवे में १५०) तनख्वाह ५०) अलौंस = २००)पाता था । एक मेरे साहब ने मुझसे अपने मातहत क्लर्कों पर जुल्म करना चाहा । मैंने इनकार कर दिया । वह बोला-तुम्हारी जगह पर दूसरा आदमी रखूंगा । मैंने तत्क्षण ही इस्तीफा लिखकर उसकी मेज पर फेंक दिया और घर चला आया । फिर मनाने-पथाने पर भी इस्तीफा वापस न लिया ।"[२]

---

१ "साहित्यवाचस्पति का पत्र-साहित्य" (लेख), "भाषा" १९६४, पृ० १५१ ।
२ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के पत्र" (१९५८), पृ० ६४ ।

इस पत्र में हमें आचार्य द्विवेदी के सत्यनिष्ठ और स्वाभिमानी व्यक्तित्व का परिचय मिलता है । रेलवे की नौकरी से त्यागपत्र देनेकी यह घटना हिन्दी के इतिहास में सदा को स्मरणीय और अमर हो गयी है ।

२ - सरस्वती का सम्पादन :

रेलवे की नौकरी से त्यागपत्र देने के बाद सन् १९०३ ई० में आचार्य द्विवेदी ने "सरस्वती" पत्रिका का सम्पादन-भार ग्रहण किया । उस समय उन्हें इण्डियन प्रेस की ओर से अधिक पैसे नहीं मिलते थे । - "सरस्वती" के ग्राहकों की संख्या भी सीमित थी । आचार्य द्विवेदी की सम्पादन-कला से "सरस्वती का अंग-अंग निखरने लगा और ग्राहकों की संख्या भी बढ़ने लगी । पं० जनार्दन झा को लिखे दिनांक २०-९-१९०४ के पत्र में आचार्य द्विवेदी जी ने सूचित किया है कि -" जब हमने "सरस्वती" का अधिकार अपने हाथ में लिया था तब उसकी दशा हीन-बहुत ही हीन थी । पर अब यह बात नहीं । अब उसका प्रचार अब से करीब-करीब दूना हो गया है ।"[1]

इस पत्र से स्पष्ट हो जाता है कि एक वर्ष में ही द्विवेदी जी के कुशल सम्पादकत्व में "सरस्वती" की काया पलट गयी । पं० पद्मसिंह शर्मा के नाम लिखे आचार्य द्विवेदी के १०-१०-१९०६ के पत्र से ज्ञात होता है कि उस समय "सरस्वती" के ग्राहकों की संख्या १५०० तक पहुंच गयी थी[2] । परिश्रम की अधिकता ने उनके स्वास्थ्य पर पर्याप्त बुरा प्रभाव डाला । उसी अवस्थता के कारण उन्हें[3] सन् १९१० ई० में पूरे एक वर्ष की छुट्टी "सरस्वती" से लेनी पड़ी । सत्रह वर्ष तक वे "सरस्वती" की पूरे प्राणपण से सेवा करते रहे । इस महान् सेवा-साधना के कारण सन् १९०३ से १९२० तक के काल-खण्ड को हिन्दी साहित्य के इतिहास में "द्विवेदी-युग" कहा जाता है ।

---

१ " द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० १२ ।

२ "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र-संग्रह", "भारतीय साहित्य," जुलाई १९६१, पृ० १८० ।

३ - वही-, पृ० १९१ ।

३ - पारिवारिक स्थिति :

आचार्य द्विवेदी का निजी पारिवारिक जीवन सुखी नहीं था। उनकी पत्नी विशेष सुन्दर नहीं थीं और हिस्टीरिया की मरीज़ थी, फिर भी उन्हें अपनी पत्नी से बड़ा प्रेम था। परन्तु दुर्भाग्य से उनके कोई संतान नहीं हुई। उन्होंने ने अपने पत्रों में प्रसंगवश कई स्थानों पर अपने पारिवारिक जीवन का संकेत किया है। २४-६-१६०३ के पत्र में पं० जनार्दन झा को लिखते हैं :-

"हम अपने वंश में कुलद्रुम हो रहे हैं। वृद्धा माता और स्त्री के सिवाय हमारा और निकट सम्बन्धी अथवा कुटुम्बी नहीं है।"[१]

परिवार की इस अभावात्मक स्थिति से ऊबकर उन्होंने श्री-कमलाकिशोर त्रिपाठी को अपना कल्पित भांजा बनाया। परन्तु इससे भी उन्हें सुख-शांति का अनुभव नहीं हुआ। मैथिलीशरण गुप्त के नाम लिखे २५-५-१६१५ के पत्र में वे अपने कौटुम्बिक जीवन की दशा का वर्णन इन शब्दों में करते हैं :-

"मैंने अपना हाल आपको नहीं लिखा। मेरा कौटुम्बिक जीवन विषमय हो रहा है। मेरे शरीर की रक्षा करनेवाला कोई नहीं। जिनको मैंने अपना कुटुम्बी बनाया है वे मुझे फलवान् वृक्ष समझकर डंडों और ईंटों की मार से शीघ्र ही कच्चे, पक्के फल गिराकर हड़प जाना चाहते हैं।"[२]

इस प्रकार माता और पत्नी की मृत्यु के बाद द्विवेदी जी का पारिवारिक जीवन अत्यन्त कष्टदायक बन गया था। वे परिवार में एक अनजबी की भांति जीवन व्यतीत करते थे। पं० किशोरीदास वाजपेयी को २२-८-१६३३ के पत्र में वे लिखते हैं :- "अपना निज का कोई नहीं, दूर-दूर की चिड़ियां जमा हुई हैं। खूब चुगती है। पुरस्कार स्वरूप दिन-रात पीड़ित किये रहती हैं।"[३] ये शब्द कितने हृदय-द्रावक हैं!

---

१ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१६५८), पृ० ७।

२ "द्विवेदी-सुम पत्रावली" (१६५४), पृ० १३३।

३ "आचार्य द्विवेदी और उनके संगी-साथी" (१६६५), पृ० १६-१७।

४ - कष्ट और यातनाएं :

जैसा कि हम कह चुके हैं, सन् १९१० ई० में अस्वस्थता के कारण आचार्य द्विवेदी को पूरे एक वर्ष तक की छुट्टी "सरस्वती" से लेनी पड़ी थी। रात को देर तक उन्हें नींद नहीं आती थी। इसी वर्ष उनकी मां का देहावसान भी हुआ।[१] इसके दो ही वर्ष बाद उनकी पत्नी भी संसार से चल बसी। अपनी पत्नी के वियोग में वे कितने दु:खी थे, यह बात पं० पद्मसिंह शर्मा को प्रेषित १३-७-१९१२ के निम्नांकित पत्र से स्पष्ट प्रमाणित होती है -

" प्रणाम। कार्ड मिला। क्या लिखूं ? यहां भी बुरा है। पत्नी मेरी इस संसार से कूच कर गई। मैं चाहता हूं कि मेरी भी जल्दी बारी आवे।"[२]

बाबू बाल मुकुन्द गुप्त, बी०एन० शर्मा आदि से हुए विवादों के कारण भी उन्हें काफी कष्ट पहुंचा। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में उन्हें अनेक यातनाएं उठानी पड़ी। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम अपने २२-१०-१९२८ के पत्र में उन्होंने लिखा है -" - - - - बहुत दूर के रिश्ते में मेरी एक भानजी है। बहीं वही यहां रह गई है। वही मुझे खिला रही है। छटांक भर गेहूं का दलिया, थोड़ीसी तरकारी (फल यहां मिलते नहीं) और सेर भर दूध, बस यही मेरी खुराक २४ घण्टे में है।"[३] ६ मार्च १९३५ को पं० बलदेवप्रसाद मिश्र के नाम प्रेषित पत्र में वे लिखते हैं :-

"मैं बहुत बूढ़ा हुआ। ७२ वर्ष का होने को आया पर स्वागत के लिए मेरी तैयारी देखकर भी मेरा महाप्रस्थान अब भी दूर ही मालूम होता है। हाथ पैर बहुत ही कम काम करते हैं। बाईं आंख बेकार-सी हो रही है, उस पर मोतिया बिन्द ने चढ़ाई बोल दी है - - - रायगढ़ के राजा साहब की कल्याण कामना करने और उनके खाते में जमा होने के लिए राम नाम जपने वाले कुछ ऐसे भी अपाहिज हैं जिनके नाम आपके -

---

१ पं० पद्मसिंह शर्मा को लिखित पत्र, "भारतीय साहित्य", जूलाई १९६१, पृ० १९६, " दो नवम्बर को अम्मा का देहांत हो गया।"

२ "सरस्वती", नवम्बर १९४०।

३ " द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० ७२ ।

दफ़्तर की किसी फ़र्द या रजिस्टर में दर्ज हो और जिनको उनके इस काम के एवज में कुछ मासिक वृत्ति मिलती हो । यदि हों और उनमें एक-आध और भी नाम लिखे जाने की गुंजाइश हो तो मुझ प्रार्थी का भी नाम दर्ज कर दीजिए ।"[1]

यह पत्र नहीं, किन्तु परम मार्मिक काव्य है । इससे स्पष्ट होता है द्विवेदी जी को अंतिम वर्षों में अनेक यातनाएं उठानी पड़ी थीं ।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

आचार्य द्विवेदी एक ईमानदार पत्र-लेखक थे । वे अपने मनोभावों को बड़ी सादगी और साहजिकता से कागज़ पर रख देते थे । अत: उनकेपत्रों में उनके चरित्र की सभी विशेषताएं मूर्तिमन्त हो उठी हैं ।

१ - स्वाभिमान :

द्विवेदी जी बड़े स्वाभिमानी पुरुष थे । आत्मगौरव उनमें कूट-कूट कर भरा था । हम देख चुके हैं कि आत्मगौरव की रक्षा के लिए ही उन्होंने डेढ़ सौ रुपये की मासिक आय ठुकराकर "सरस्वती" के तेईस रुपये की मासिक वृत्ति स्वीकार कर ली । नागरी प्रचारिणी सभा से एक बार जब उनका सैद्धान्तिक मतभेद हुआ तब बहुत समय तक उन्होंने सभा-भवन में पैर नहीं रखे । इस सम्बन्ध में राय कृष्णदास जी के नाम लिखे उनके २-१०-१९१० के पत्र का यह अंश द्रष्टव्य हैं :-

"जिस सभा ने मुझे सभा से हटाने की कोशिश की और जिसको मैंने इतने दोष दिखलाये, उससे मैं अब सम्पर्क नहीं रखना चाहता । यह मेरी कैफ़ियत आपके जानने के लिए हैं, प्रकाशित करने के लिए नहीं ।"[2]

इसी प्रकार बी०एन० शर्मा की हरकतों के विषय में उन्होंने पं० पद्मसिंह शर्मा को लिखा था कि " बी०एन० की मनमथ शब्दवाली बात हमारे चरित्र पर धब्बा लगानेवाली है, इसीसे कुछ करना होगा । हमारा पक्का इरादा इन पर मुकदमा चलाने का है ।"[3] इस प्रकार द्विवेदी जी आत्म-सम्मानी व्यक्ति थे ।

१ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० ५६ ।
२ "द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), पृ० १४१ ।
३ " भारतीय साहित्य", जुलाई- अक्टूबर १९६२, पृ० १६३ ।

२ - निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता :

आचार्य द्विवेदी एक निर्भीक और स्पष्टवक्ता लेखक थे । दबना उनकी प्रवृत्ति में नहीं था । पं० पद्मसिंह शर्मा के नाम एक पत्र में उन्होंने लिखा था :" एक बात लिखना उस तरफ भूल गये । हम कवियों क्या महाकवियों तक की नाराजी की परवा नहीं करते ।"[१] इसी प्रकार राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के "साकेत" पर अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया था :

" तुलसी की कविता से आपकी अपनी कविता की तुलना करना शोभा नहीं देता ।"[२]

"द्विवेदी जी की इस स्पष्टवादिता ने लोगों के मन में यह धारणा उत्पन्न कर दी थी कि उनमें अकड़ एवं अहम्मन्यता है । परन्तु वस्तु-स्थिति ऐसी नहीं थी । वे बड़े सरल हृदय के थे और सच्ची और स्पष्ट बात कहते थे ।

द्विवेदी जी के उपर्युक्त पत्र से गुप्त जी तिलमिला उठे थे । उन्होंने २८ जनवरी १९३२ के पत्र में लिखा-" आज पच्चीस वर्ष से ऊपर हुए, मैं आपकी छत्रच्छाया में हूं । यह बात औरों के कहने के लिए रहने दीजिए ।-------मैंने अपनी ध्यान-समाधि में जैसा देखा वैसा लिखा ।"[३] इस पर द्विवेदी जी ने उत्तर दिया -" आपने मुझसे राय मांगी, मुझे जो कुछ उचित समझ पड़ा, लिखकर मैंने आपकी इच्छा की पूर्ति कर दी । - - - ध्यान-समाधि लगाकर पुस्तक लिखनेवालों को मेरे और बनारसीदास जैसे मनुष्यों की राय की परवा ही क्यों करनी चाहिए ? वे अपनी राह जायं, आप अपनी । आपकी राय ठीक, मेरी और बनारसीदास की गलत सही-तुष्यतु भवान् ।"[४]

द्विवेदी जी के इस पत्र से गुप्तजी को अपनी भूल का अहसास हुआ और उन्होंने द्विवेदी जी से क्षमा याचना की । इस प्रकार द्विवेदीजी

---

१ " भारतीय साहित्य," अप्रैल १९६२, पृ० १५७ ।

२ " महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग" (सं २००८ वि०) डा० उदयभानु सिंह, पृ० ४५ से उद्धृत ।

३ - वही -

४ - वही -

की उग्रता के मूल में दुर्भावना नहीं होती थी ।

आचार्य द्विवेदी के चरित्र की उक्त विशेषताओं के सम्बन्ध में डा० शैव्या झा का यह मत उद्धरणीय है कि -" यदि आचार्य द्विवेदी में निर्भयता, आत्मगौरव और उग्रता की ये स्वभावगत विशेषताएं न होतीं, तो वे अपने समसामयिक साहित्यकारों को डांट - फटकार कर हिन्दी-भाषा और उसके साहित्य को एक नया मोड़ देने में समर्थ नहीं होते ।"[1]

३ - नम्रता एवं सरलता :

आचार्य द्विवेदी जितने स्वाभिमानी और उग्र प्रकृति के थे, उतने ही नम्र और सरल थे । एक बार पं० जनार्दन झा ने उनको पत्र लिखकर "सरस्वती" में रह गयी भूलों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया था । इस पत्र का उत्तर देते हुए आचार्य जी ने लिखा -" हमारे सदृश अल्पज्ञों से यदि भूलें हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं ।"[2] इसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त की रामायण-विषयक जानकारी की सराहना करते हुए उन्होंने लिखा था -" मेरी राय है कि आप इस विषय में मुझसे अधिक ज्ञान रखते हैं ।"[3]

अपने सरल स्वभाव के बारे में द्विवेदी जी ने पं० पद्मसिंह शर्मा को लिखा था -" हम सरल हृदय मनुष्य हैं । दाव-पेंच की बात हम नहीं जानते ।"[4]

इन पत्रों से स्पष्ट होता है कि द्विवेदी जी विनम्र, गुणग्राही, क्षमाशील और सरल हृदय व्यक्ति थे ।

४ - भावुकता एवं आस्तिकता :

द्विवेदी जी सरलता, नम्रता, भावुकता और आस्तिकता के अवतार थे । बी०एन० शर्मा के आरोपों से वे उत्तेजित हो उठते थे, अत: पं० पद्मसिंह शर्मा को एक पत्र में उन्होंने अपनी भावना प्रकट करते हुए

---

१ " आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी: व्यक्तित्व और कर्तृत्व" (१९७७), पृ० ४१

२ " द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० २ ।

३ " द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), १३४ ।

४ " भारतीय साहित्य", जुलाई १९६१, पृ० १८८ ।

लिखा था -" यदि बी०एन० आगे कुछ और लिखें तो उसके लेख की कटिंग हमें न भेजिएगा । पढ़ने से तबीअत उत्तेजित हो उठती है ।"[1] इसी प्रकार डा० बलदेवप्रसाद मिश्र को अपनी श्रद्धा-भक्ति का परिचय देते हुए एक पत्र में उन्होंने कहा है कि -" भैया, मिश्रजी, मैं रामायण का भक्त हूं । रोज सुबह उठकर कहता हूं -"मो सम दीन न, दीनहित, तुम समान रघुवीर ।"[2]

५ - कर्तव्यपरायणता एवं दानशीलता :

आचार्य द्विवेदी प्रत्येक कार्य को उत्साह, लगन और निष्ठा से अपनाते थे । पं० पद्मसिंह शर्मा के नाम प्रेषित उनके एक पत्र में हमें एक सूक्ति मिलती है कि -" अवकाश आलसी आदमियों को ही रहा करता है ।"[3] वे हमेंशा कार्यरत रहते थे । " सरस्वती " से अवकाश ग्रहण करने के बाद जब वे अपने गांव दौलतपुर में रहने लगें, तब अपने गांव के प्रति उनकी कर्तव्यपरायणता और बढ़ गयी । अपने गांव में उन्होंने हिन्दी पाठशाला, डाकघर और एक अस्पताल का प्रबन्ध किया । इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी हमें "द्विवेदी-पत्रावली" में संकलित "विविध पत्र" से मिलती है । उन्होंने अपनी गाढ़ी कमाई के ६४०० रु० काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय को दान कर दिये । इस प्रकार वे एक कर्मठ और दानवीर पुरुष थे ।

६ - प्रतिभा की परख :

आचार्य द्विवेदी न केवल प्रतिभा के धनी ही थे, वरन् औरों की प्रतिभा को परखने की अन्तर्दृष्टि भी उनमें थी । दूसरे शब्दों में वे एक सबल साहित्यकार ही नहीं थे, एक सफल साहित्यकार-निर्माता भी थे । अपने समय की १७ वर्षों की " सरस्वती " की हस्तलिखित कापियां नागरी प्रचारिणी सभा को सौंपने की इच्छा प्रकट करते हुए उन्होंने बाबू श्यामसुन्दरदास को एक पत्र में लिखा है -" उनको देखने से पता लगेगा कि आजकल के हिन्दी के अनेक धुरंधर लेखक किस तरह राह पर लाये गये थे ।"[4]

---

१ " भारतीय साहित्य ", जनवरी १९६२, पृ० १०९ ।

२ " द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र " (१९५८), पृ० ६० ।

३. भा० सा० -जु- अगस्त० १९६२ पृ० १४३ ।

४." द्वि० युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र, पृ० ४८ ।

इस विषय में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने बहुत उपयुक्त कहा है- "आचार्य द्विवेदी ने साहित्य कम, साहित्यिक अधिक पैदा किये । इस युग के बड़े-से-बड़े लेखक, महाकवि उन्हीं के बनाये हैं ।"[1] इस प्रकार द्विवेदी जी होनहार साहित्य-सेवियों को हर सम्भव प्रोत्साहन देते थे और उनकी प्रतिभा भली भांति परखते थे ।

आचार्य द्विवेदी के चरित्र की उपर्युक्त विशेषताओं के अध्ययन से विदित होता है कि उनके चरित्र में मिठास और तिक्तता, करुणा और कठोरता, दया और रोष, भावुकता और यथार्थ का एक अभूतपूर्व मेल था । पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने उनके चरित्र की इन विशेषताओं को लक्षित कर सर्वथा योग्य लिखा है -" द्विवेदी जी सचमुच 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि" चरित्रवाले लोकोत्तर पुरुष थे ।"[2]

(ग) दृष्टिकोण या विचारधारा :

आचार्य द्विवेदी गरीब घर में पैदा हुए थे, गरीबी में पले थे और कठोर संघर्ष करके आगे बढ़े थे । अत: धनी बनना, धन बटोरकर, धनके बल पर अथवा पद के बल पर बड़ा आदमी बनना उनका आदर्श नहीं था । सत्य को स्पष्ट रूप में कहने की अटूट दृढ़ता उनके व्यक्तित्व का सबसे बड़ा गुण था । इसी कारण उनसे प्राय: लोगों से लड़ाइयां हो जाया करती थीं । किन्तु लड़ाइयों में भी वे संयम रखते थे । उनके वाद-प्रतिवाद का धरातल ऊंचा होता था । भाषा और व्याकरण के मामले को लेकर बाबू बालमुकुन्द गुप्त से उनका प्रखर संघर्ष हो गया था । इस विवाद के अनेक सन्दर्भ-सूत्र उनके पत्र-साहित्य में उपलब्ध होते हैं म जिनसे पता चलता है कि उनके विवादों में भी व्यापक दृष्टि और सिद्धान्त की गम्भीरता होती थी । सत्य-प्रियता, न्याय-निष्ठा, स्पष्टवादिता और हिन्दी हितैषिता से हटकर उन्होंने विवाद किया ही नहीं ।[3]

द्विवेदी जी के पत्रों में हमें उनके काव्य-सिद्धान्त विषयक दृष्टिकोण का विशद परिचय मिलता है । डा० बलदेव प्रसाद मिश्र को

१" साहित्यिकों के पत्र" (१९५८), पृ० २ ।

२" हिन्दी का सामयिक साहित्य" (सं० २००८ वि०) पृ० २५ ।

३" द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), पृ० २८ ।

प्रेषित एक लम्बे पत्र में उन्होंने उत्तम, मध्य और अधम काव्य के विषय में अपनी मान्यताओं को सोदाहरण स्पष्ट किया है । उत्तम काव्य की - व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है :-

"मनुष्य का हृदय नाना प्रकार के विकारों का आकार है । यही विकार भाव भी कहे जा सकते हैं । ये प्रस्तुत रहते हैं । अनुकूल सामग्री उपस्थित होने पर ये उद्दीप्त हो जाते, जाग उठते हैं । जिस कविता के आकलन से इनकी उद्दीप्ति होती है । वही उत्तम काव्य है ।"[1]

इसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त को लिखे २२-५-१९१० के पत्र में अमर कविता का लक्षण उन्होंने इन शब्दों में प्रकट किया है - "काव्य ऐसा होना चाहिए जो सबके मनोविकारों को उत्तेजित करें-देशकाल से मर्यादाबद्ध न हो ऐसी ही कविता अमर होती है ।"[2]

इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि द्विवेदी जी युग-युगीन साहित्य के सृजन में आस्था रखते थे ।

आचार्य द्विवेदी के पत्र-साहित्य में उनका व्यक्तित्व पूर्णतः प्रतिबिम्बित होता है । सहज सत्य की अभिव्यक्ति उनके पत्रों का सबसे बड़ा आकर्षण है । उनसे पत्र-व्यवहार करने में साहित्यिकों को बड़ा आनन्द होता था । बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने "भाषा की अनस्थिरता" विवाद से पहले उनके अनेक पत्र पाये हैं । अपने १३-१२-१९०० के पत्र में वे द्विवेदी जी को लिखते हैं- " आपसे पत्र-व्यवहार करने में हमको बड़ा आनन्द होता है, सत्य जानिए ।"[3]

पं० पद्मसिंह शर्मा स्वयं एक श्रेष्ठ पत्र-लेखक थे, किन्तु उन्हें भी आचार्य द्विवेदी के पत्रों से अपूर्व आनन्द प्राप्त होता था । द्विवेदी जी के नाम प्रेषित अपने २३-६-१९०७ के पत्र में उन्होंने लिखा है -" - - - इन झंझटों में पड़कर जहां अन्य हानियां उठानी पड़ीं, वहां सबसे अधिक कष्ट यह प्रतीत हुआ कि आपसे पत्र व्यवहार बन्द रहा, जिससे दिल बहला करता था ।"[4]

१" ~~सम्मेलन~~ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० ६० ।
२" द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), पृ० ११४ ।
३" बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रंथ" (१९५०), पृ० १२४ ।
४" द्वि०युग के सा० के कुछ पत्र", पृ० १३८ ।

इससे स्पष्ट है कि द्विवेदी जी एक उच्च कोटि के पत्र-लेखक थे । उनके पत्र-साहित्य के अध्ययन के बिना उनके लोकोत्तर चरित्र का अध्ययन अपूर्ण होगा ।

३ - पद्मसिंह शर्मा (१८७६-१९३२) :

आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा हिन्दी साहित्य के एक जाज्वल्यमान् नक्षत्र थे । वे एक काव्य मर्मज्ञ, निष्पक्ष समालोचक, सत्काव्यानुरागी अत्युच्च साहित्यकार थे । उनकी साहित्यिक तन्मयता के विषय में पं०-बनारसीदास चतुर्वेदी ने कहा है - " अपने विस्तृत साहित्यिक जीवन में हमें कोई ऐसा दूसरा व्यक्ति नहीं मिला, जिसमें साहित्यिक तन्मयता ~~इ~~ इतनी अधिक मात्रा में विद्यमान हो । आचार्य की तरह के विद्वान् तथा समीक्षक तो सम्भवत: कई होंगे, पर साहित्य के लिए अपना सम्पूर्ण समय, शक्ति तथा साधनों को अर्पित करनेवाला शायद ही कोई दूसरा हो ।"[1] इस प्रकार पं० पद्मसिंह शर्मा एक महामहिम मनीषी एवं शुद्ध साहित्यिक व्यक्ति थे ।

शर्मा जी का पत्र-साहित्य :

पत्र-लेखन पं० पद्मसिंह शर्मा का प्रिय विषय था । उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "पद्मपराग" में एक स्थान पर लिखा है कि- "पत्र व्यवहार का मुझे एक व्यसन-सा रहा है । पत्र लिखते-लिखते ही मैंने कुछ लिखना सीखा है ।"[2] वे अपने पत्र-व्यवहार में उतने ही निष्ठावान थे जितने कि साहित्य-सृजन में । आवश्यक पत्रों का यथाशीघ्र उत्तर ~~देना~~ देना वे अपना कर्तव्य समझते थे । एक बार पं० हरिशंकर शर्मा की ओर से समय पर उत्तर न मिलने पर वे तिलमिला उठे थे । हरिशंकर जी को स्पष्ट शब्दों में उन्होंने लिख दिया था -

---

१ " आचार्य पद्मसिंह शर्मा : व्यक्ति और साहित्य "(१९७४), संपा० पं० बनारसीदास चतुर्वेदी और अन्य, दो शब्द, पृ० १० ।

२ " पत्र व्यवहार- एक मनोरंजक व्यसन " (लेख), पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, " विशाल भारत " सितम्बर १९५१, पृ० १६४ से उद्धृत ।

" मालूम होता है महात्मा जी की मदहसराई करके अब तुम मामूली आदमियों से बात करना शान के खिलाफ समझने लगे हो । खत का जवाब भी नहीं देते । २०-२५ दिन हुए एक जरूरी कार्ड लिखा था , आज तक जवाब मिलता है । महात्माजी भी लोगों के पत्रों का जवाब देते हैं और वक्त पर देते हैं । जैसा कि पं० बनारसीदास जी कहते हैं । जो कुछ हो यह पत्र हजम करने की आदत अच्छी नहीं, डकार तक नहीं लेते ।"[1]

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के समान आचार्य पद्मसिंह शर्मा का पत्र-साहित्य भी विस्तृत और समृद्ध है । पत्रों की सुरक्षा और सम्भाल में भी वे आचार्य द्विवेदी की तरह सजग और सतर्क थे । विभिन्न साहित्यकारों द्वारा उनको लिखे गये पत्रों के कई बक्से हिन्दी विद्यापीठ आगरा - विश्वविद्यालय ने अपनी सुरक्षा में लिये हैं । इनमें से कुछ पत्र क्रमश: "भारतीय-साहित्य" में "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र-संग्रह" शीर्षक से प्रकाशित भी हुए हैं ।

पं० पद्मसिंह शर्मा के पत्रों का स्वतंत्र संग्रह बनारसीदास चतुर्वेदी और हरिशंकर शर्मा के सम्पादकत्व में "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" शीर्षक से प्रकाशित हुआ है । इस संग्रह में हिन्दी के प्रसिद्ध ३२ साहित्यिकों के नाम शर्मा जी के २६८ पत्रों का संकलन है । श्री " विनोद " द्वारा सम्पादित "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" शीर्षक संग्रह में आचार्य द्विवेदी के नाम शर्मा जी के ६१ पत्र, श्री लल्लीप्रसाद पाण्डेय के नाम उनके ४ पत्र तथा श्रीधर पाठक के नाम उनका एक पत्र संकलित हैं । इसके अतिरिक्त पं०-बनारसीदास चतुर्वेदी और अन्य विद्वानों द्वारा सम्पादित पद्मसिंह शर्मा स्मृति-ग्रंथ "आचार्य पद्मसिंह शर्मा : व्यक्ति और साहित्य" में भी शर्माजी के पत्र-साहित्य पर विस्तार से विभिन्न लेखों द्वारा प्रकाश डाला गया है । पं० शर्मा जी को लिखे गये आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के कुछ पत्र "द्विवेदी-पत्रावली" में संकलित हैं और कुछ "भारतीय साहित्य" के विभिन्न अंकों में प्रकाशित हैं । इन पत्रों के उत्तर "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र " में संकलित शर्मा जी के ६१ पत्रों में उपलब्ध होते हैं । अत: तीनों को मिला-कर पढ़ने से और अधिक आनन्द मिलता है और हिन्दी साहित्य की अनेक

---

१ " पद्मसिंह शर्मा के पत्र " (१९५६), पृ० ४४-४५ ।

गतिविधियों पर प्रकाश पड़ता है । पं० शर्माजी के पत्रों का लेखनकाल सामान्यत: १९०५ से १९३२ है । इस प्रकार उनका पत्र-साहित्य द्विवेदी-युग, छायावाद-युग तथा स्वराज्य-आंदोलन की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं की झलक प्रस्तुत करता है । पत्र-लेखन कला की दृष्टि से भी उनका पत्र-साहित्य अद्वितीय है । उनके बहुमुखी व्यक्तित्व का सही-स्वाभाविक परिचय हमें उनके पत्रों में ही प्राप्त होता है ।

पत्रों में प्रतिबिम्बित शर्मा जी का व्यक्तित्व :

प्रखर प्रतिभा के धनी पं० पद्मसिंह शर्मा का व्यक्तित्व हिन्दी को आधुनिकता प्रदान करनेवाले इने-गिने साहित्यकारों में अन्यतम है । यद्यपि शर्मा जी के पत्रों में अधिकांशत: उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का ही प्रतिबिम्बन हुआ है, तथापि उनके जीवन के कई महत्वपूर्ण प्रसंगों की झांकी भी मिलती है ।

(क) जीवनी-सूत्र :

" आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा का व्यक्तित्व एवं उनके पत्र" शीर्षक एक लेख में बाबू वृन्दावनदास ने लिखा है कि -"आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा सर्वतोभावेन तथा मनसा-वाचा-कर्मणा-साहित्यकार थे । वे अपने को न नेता मानते थे और न सामाजिक कार्यकर्ता । वे शुद्ध साहित्यिक व्यक्ति थे ।"[१] अत: उनके पत्रों में साहित्यिक विषयों की चर्चा अधिक मिलती है । उनके वैयक्तिक प्रसंगों का सम्बन्ध भी किसी-न-किसी रूप में साहित्यिक जीवन से है । यहां हम उन्हीं प्रसंगों पर किंचित् प्रकाश डालेंगे ।

१ -"परोपकारी" से त्याग-पत्र :

पं० शर्मा जी सन् १९०८ ई० में अजमेर चले गये थे । वहां से ~~कर के~~ परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा प्रकाशित "परोपकारी" का सम्पादन करते थे । परन्तु बी०एन० शर्मा आदि आर्य-समाजी लेखकों के अभद्रतापूर्ण व्यवहार से उन्हें आर्यसमाज से नफ़रत हो गयी थी । आचार्य द्विवेदी के नाम अपने २८-९-१९०८ के पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिखा है-

---

१" आचार्य पद्मसिंह शर्मा स्मृति-ग्रंथ" (१९७४), पृ० २२७ ।

" हमें तो ऐसी-ऐसी बातें देखकर इस समाज से घृणा सी हो गई है ।"[1] १३-१२-१६०८ के पत्र में वे लिखते हैं -" मैं "आर्यमित्र" की संपादकता स्वीकार नहीं कर सकता । कई कारण हैं, प्रधान कारण यह है कि आर्यसामाजिक नौकरियों में स्वतंत्रता नहीं रहती, गुलामी की दशा से बदतर है । - - - बड़े दिन की छुट्टियों में परोपकारिणी का अधिवेशन होगा । उसी में इस्तीफा देकर मैं छुट्टी हासिल करूंगा ।"[2] इस प्रकार इन पत्रों से ज्ञात होता है कि शर्मा जी आर्य-समाज के प्रचारक होते हुए भी उसकी संकीर्णता से मुक्त थे ।

२ - "भारतोदय" का प्रकाशन :

सन् १६०६ ई० में महाविद्यालय ज्वालापुर से पं० पद्मसिंह शर्मा की सम्पादकता में "भारतोदय" शीर्षक पत्रिका का प्रकाशन हुआ । इसके प्रारम्भिक अंक के सम्बन्ध में उन्होंने आचार्य द्विवेदी के नाम अपने ६-६-१६०६ के पत्र में लिखा था -" भारतोदय" बड़ी गड़बड़ की हालत में निकला । आपको पसंद आ गया, शुक्र है ।"[3] शर्मा जी के सम्पादनलेखन से "भारतोदय" मासिक से साप्ताहिक होकर हिन्दी में लोकप्रिय हुआ । बहुत से नये लेखक "भारतोदय" से प्रकाश में आये । भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र-प्रसाद का" समाज संशोधन" शीर्षक लेख "भारतोदय" में ही छपा था जिसकी शर्मा जी ने बहुत प्रशंसा की थी । डा० राजेन्द्रप्रसाद ने संवत् १६६७(सन् - १६१०) पौष शुक्ल १४ को शर्मा जी के नाम एक पत्र भेजकर अपनी कृतार्थता इन शब्दों में व्यक्त की थी -" - - - समाज-संशोधन " वाला लेख आपको इतना पसन्द होगा, यह मुझे कभी धारणा नहीं थी । मेरा हिन्दी-लेखन जन्म सफल हुआ ।"[4] इससे स्पष्ट है कि पं० शर्मा जी एक कुशल सम्पादक थे।

३ - सम्मान-पुरस्कार :

सन् १६२२ ई० में पं० पद्मसिंह शर्मा को संजीवन भाष्य एवं बिहारी सतसई प्रथम भाग पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ । इस

---

१ " द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१६५८), पृ० १५७ ।

२ " - वही - , पृ० १६२-६३ । ३ - वही- , पृ० १६८ ।

४ " मनोरंजक संस्मरण" (१६७०), श्रीनारायण चतुर्वेदी, पृ० २०७ से उद्धृत ।

पारितोषिक-समिति के निर्णायक थे पं० श्रीधर पाठक, पं० वियोगी हरि और प्रो० रामदास गौड़। पं० शर्मा जी ने अपने वैशाख कृ० ८,१९८० वि० को पं० श्रीधर पाठक के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए लिखा था-"आपकी उदारता और कृपा का नितान्त अनुगृहीत हूं। श्रीमान् ने मेरी तुच्छ रचना को इतना आदर दिया, इसका कारण केवल आपकी महानुभावता है, धन्यवाद और कृतज्ञता प्रकाशन करके मैं इस उपकार से" उऋण" नहीं हो सकूंगा।"[1]

इस पत्र के उत्तर में पं० श्रीधर पाठक ने पं० शर्मा जी की प्रतिभा के सम्बन्ध में अपने विचार प्रदर्शित करते हुए लिखा-" - - - आप अपनी ईश्वर-प्रदत्त साहित्यिक क्षमता से समभिज्ञ नहीं हैं। उसकी क्षमता का अन्दाज दूसरे लोग ही कुछ-कुछ लगा सकते हैं। तुच्छ बारह सौ मुद्रा आपकी अमूल्य कृति के बारह वाक्य क्या बारह शब्दों पर वार दिये जाने को यथेष्ट नहीं। यों तो "मान कौ बीरा हीरा के समान है" परन्तु आपके अपरिमेय परिश्रम का यह अल्प मात्रिक पारितोषिक मातृभाषा की स साहित्यात्मा को पर्याप्त परितोषप्रद नहीं हो सकता।"[2]

पं० श्रीधर पाठक के इस पत्र से हमें शर्माजी की प्रतिभा का वास्तविक परिचय प्राप्त होता है।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

पं० पद्मसिंह शर्मा बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे एक श्रेष्ठ समालोचक, कुशल सम्पादक, सहृदय साहित्य-सेवक, विद्वान् व्याख्याता, सिद्धहस्त अध्यापक और सर्वश्रेष्ठ पत्र-लेखक थे। उनका बहुमुखी व्यक्तित्व स्पष्ट रूप में उनके पत्रों के पृष्ठ पर अंकित है। पत्रों में प्रतिबिम्बित उनके चरित्र की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं:-

१ - भावुकता :

पं० पद्मसिंह शर्मा एक अत्यन्त भावुक और संवेदनशील साहित्यकार थे। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने २६-१-१९२० के पत्र में उनको

---

१ " द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० १९१।

२ - वही -, पृ० २०२ ।

लिखा था -" मैं खुशामद नहीं करता, लेकिन मुझे कहना पड़ता है कि ठाकुर गदाधरसिंह जी को छोड़कर मैं किसी दूसरे हिन्दी लेखक का नाम नहीं ले सकता जिसमें आपके समान भावुकता हो ।"[1]

पं० शर्मा जी अपने साहित्यिक मित्रों को स्वजन से भी अधिक मानते थे । आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रति उनके मन में अपार आदर था । जैसा कि हम कह आये हैं, द्विवेदी से पत्र-व्यवहार करने में उन्हें अत्यन्त आनन्द मिलता था । एक बार बीमारी के कारण वे द्विवेदी जी को कई दिनों तक पत्र नहीं लिख पाये । द्विवेदी जी ने पत्र भेजकर कहा कि -"क्या आप हमें भूल तो नहीं गये ?" इसके उत्तर में शर्मा जी ने लिखा कि -" मैं और आपको भूल सकता हूं ? यदि यह सम्भव हो "तदात्मानमपि विस्मरिष्यामि ।"[2]

इसी प्रकार पं० हरिशंकर शर्मा ने उनको एक पत्र लिखकर पूछा था कि -"क्या आप मुझसे नाराज हैं ?" इसके उत्तर में उन्होंने हरिशंकरजी को भावपूर्ण पत्र भेजते हुए कहा-" आप मुझे अपने से अप्रसन्न या नाराज समझें, इससे अधिक भयंकर अभियोग मुझ पर नहीं लगाया जा सकता । मैं अपनी जिन्दगी से बेजार हो सकता हूं, पर आपसे अप्रसन्न नहीं हो सकता । जिस दिन ऐसा विचित्र परिवर्तन मेरे स्वभाव में दिखलाई दे तो समझ जाइए कि दिन किनारे आ लगे हैं ।"[3]

इन उद्धरणों से प्रकट होता है कि पं० शर्मा जी सहृदय और संवेदनशील व्यक्ति थे ।

२ - रसिकता :

पं० पद्मसिंह शर्मा एक रसज्ञ विद्वान् थे । रसिक कवि बिहारी की सतसई पर संजीवन भाष्य लिखकर उन्होंने अपनी रसिकता एवं रस-मर्मज्ञता का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है । उनके पत्रों में भी हमें यत्र-तत्र उनके रसिक हृदय का साक्षात्कार होता है । आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

---

१ " स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा पत्र-संग्रह" भारतीय साहित्य, वर्ष-१४ , अंक १-२, पृ० २१७ ।

२ " द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० १४२ ।

३ " पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ० ३० ।

के "तरुणोपदेश" पढ़ने की उत्सुकता प्रकट करते हुए उन्होंने अपने ६-८-१९०५ के पत्र में लिखा था -" मैं अभी वृद्ध नहीं हुआ । वात्स्यायन कामसूत्र मैंने पढ़े हैं और कई बार पढ़े हैं । वे मेरे पास हैं भी । परन्तु आपके तरुणोपदेश में निरावही विषय तो नहीं होगा ।"[1]

एक अन्य पत्र में वे आचार्य द्विवेदी जी को लिखते हैं -"यद्यपि सभी रस अपने अपने मौके पर मेरे चित्त को अधिकृत कर लेते हैं । परन्तु उनमें से श्रृंगार और करुणा ये दो मुझे अधिक प्रिय हैं ।"[2]

पं० शर्मा जी बिहारी सतसई पर इतनी विस्तृत एवं विदग्धतापूर्ण विवेचना कर सके, इसका कारण उनके हृदय की यह रसिकता एवं श्रृंगार-रस के प्रति गहरी रुचि है ।

३ - मनस्विता :

पं० शर्मा जी एक मनस्वी लेखक थे । आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए ही उन्होंने परोपकारिणी सभा का परित्याग किया था । आत्म-गौरव को अक्षुण्ण रखने के लिए उनको बहुत कुछ सहन करना पड़ा था । पं० वियोगी हरि के नाम प्रेषित दिनांक १३-४-१९२९ के पत्र में उन्होंने सूचित किया है -" मनस्विता की कमी मुझमें भी नहीं है । इसके पीछे मैंने भी अपने को तबाह कर लिया है, पर किसी मित्र के लिए तो भीख मांगने में भी मुझे संकोच नहीं, फिर यह तो एक व्यवहार की बात है, अपना कर्तव्य है ।"[3] इस प्रकार शर्माजी मनस्वी साहित्यकार थे, परन्तु मित्रों के प्रति उनके मनमें अपार स्नेह था ।

४ - नम्रता :

शर्मीजी संस्कृत भाषा के प्रकांड पंडित थे । उर्दू के भी वे अच्छे ज्ञाता थे, तथापि अपने पांडित्य का उन्हें लेशमात्र अभिमान नहीं था । आचार्य द्विवेदी को एक पत्र में वे लिखते हैं -" पंडित जी, मैं कुछ संस्कृत, मामूली हिन्दी और उर्दू और थोड़ी-सी फारसी के अतिरिक्त और कोई

---

१ " द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), ८१ ।

२ " - वही - , पृ० ९२ ।

३ " पद्मसिंह शर्मा के पत्र " (१९५६), पृ० २८ ।

भाषा नहीं जाता ।"[1] कविवर नाथूराम शंकर शर्मा की कविता के प्रति अपने मनोभाव व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा था - " - - - मेरा तो रोम-रोम आपकी कविता का अनन्य भक्त है ।"[2] इस प्रकार शर्माजी एक धुरंधर विद्वान् एवं समर्थ कवि होते हुए भी विनम्र एवं सरल प्रकृति के व्यक्ति थे ।

५ - स्पष्टवादिता एवं निर्भयता :

पं० पद्मसिंह शर्मा एक स्पष्टवक्ता थे । वे अपने साहित्यिक मित्रों का सम्मान अवश्य करते थे, किन्तु कोई उन पर दबाव डाले, यह सम्भव न था । हरिशंकरजी को पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के विषय में अपनी स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उन्होंने एक पत्र में लिखा है-" मैं उनका सम्मान करता हूं, पर जिस बात में मत नहीं मिलता उससे मैं किसीकी लिहाज़ नहीं करता ।"[3] इसी प्रकार अपना स्पष्ट मंतव्य प्रकट करते हुए उन्होंने पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को भी लिख दिया था -" मैं महात्मा-गांधी का अनुयायी नहीं हूं - यानी अहिंसावादी । मैं लोकमान्य तिलक का भक्त हूं । मुझे जो बात ठीक मालूम देती है और विशेषतया ऐसे प्रसंगों पर उसे जोरदार शब्दों में प्रकट किये बिना नहीं रहा जाता ।"[4]

पं० शर्मा जी को ढोंगी लीडरों से घृणा थी । उन्होंने बड़ी निर्भीकता से ढोंगी लीडरों पर प्रहार किये हैं । एक पत्र में उन्होंने पं०-बनारसीदास चतुर्वेदी को सूचित किया है कि वे" लीडर-लीला" लिखना चाहते हैं ।"[5] इस प्रकार पं० शर्मा जी भी आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी की भांति स्पष्ट वक्ता और निर्भीक साहित्य-सेवी थे ।

६ - परिहास-प्रियता :

पं० शर्माजी बड़े विनोदी प्रकृति के व्यक्ति थे । उनके पत्रों में हास्य - व्यंग्य की प्रचुर सामग्री मिल जाती है । -

---

१" द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० ६१ ।

२" पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ० २४३ ।

३" - वही -, पृ० ४६ ।

४ - वही -, पृ० ७० ।

५ - वही -, पृ० ५६ ।

यही नहीं, उनके पत्रों में विनोद के साथ व्यंग्य का पुट भी मिलता है। जैसा कि डा० गिरिराज शरण अग्रवाल ने कहा है, "अपने संगी-साथियों पर भी, वे व्यंग्य का प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं, परन्तु ऐसे स्थलों पर उनका उद्देश्य उनकी अप्रशंसा करना नहीं होता वरन् उन विनोद-पूर्ण मीठी भिड़कियों में प्रेरणा, स्नेह और सहानुभूति छिपी हुई मिलती है।"[1] उदाहरणस्वरूप पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम परम्परागत शैली में लिखे निम्नांकित पत्र में प्रकट विनोद की बानगी लीजिए -

"स्वस्ति श्री सर्वोपमान योग्य सकल गुण-निधान, प्रवासी भारतीयों की जान, परम सुजान, सद्गुण रत्नों की खान, घासलेटी-आन्दोलन के महायान, गंगाजल निर्मल, यमुना - जल शीतल, पावन पवित्र, अति विचित्र, ज्ञातिशिरोमणि इत्यादि विविध बिरूदावली विराजमान श्री-(एक सौ अनगिनत) मान् चतुर्वेदी जी उर्फ "कर्रीजी" महाराज, जय जमना मैया की।"[2]

इसी प्रकार पर्याप्त समय की प्रतीक्षा के पश्चात् श्री वियोगी हरि से पत्रोत्तर प्राप्त होने पर शर्मा जी ने अपनी विनोदी वृत्ति के अनुकूल उन्हें लिखा -" प्रिय वियोगी हरिजी महाराज, नमो नमस्ते स्तु सहस्र कृत्व:।। आखिर आपकी निद्रा टूटी, अज्ञातवास से प्रकाश में आना ही पड़ा। मैं हैरान था कि किस कन्दरा में जा छिपे। क्या बात हुई जो इस तरह एकदम मौनी बाबा बन गए।"[3]

पं० शर्मा जी अपने ऊपर हंसने की कला में भी निपुण थे। उन्होंने ८ दिसम्बर १९२२ को पं० भीमसेन शर्मा के नाम प्रेषित अपने पत्र में अपनी जुकाम-पीड़ा के बारे में लिखा था -

" मुझे कल रात से जुकाम और बुखार भी है। रात भर नींद नहीं आई -

नाक से बहता है मेरी दोस्ते मन दरियाए गंग।
सिर मेरा क्या आज यह कैलाश पर्वत हो गया।।"[4]

---

१ "आचार्य पद्मसिंह शर्मा के पत्रों में व्यंग्य विनोद" (लेख), "आचार्य पद्मसिंह शर्मा: व्यक्ति और साहित्य" (१९७४), पृ० २३० ।

२ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ० १११ ।

३ -वही-, पृ० २५ ।

४ -वही-, पृ० २०६ ।

इन पत्रांशों से स्पष्ट है कि पं० शर्मा जी एक परिहासप्रिय व्यक्ति थे ।

७ - स्वाध्यायशीलता :

हिन्दी में पं० पद्मसिंह शर्मा जैसे अध्ययनशील साहित्यिक बहुत कम मिलते हैं । वे रात को तीन बजे तक पढ़ते रहते थे । उनके यहां कई आलमारियां पुस्तकों एवं पत्रिकाओं से ठसाठस भरी होती थीं । पं० ज्वालादत्त शर्मा को लिखे एक पत्र में उन्होंने अपनी अध्ययनशील प्रकृति के सम्बन्ध में कहा है कि -" यों तो मुझे पढ़ने का भस्मक रोग है । जाने क्या-क्या पढ़ डालता हूं, फिर भी नीयत नहीं भरती ।"[1] उनके प्रत्येक पत्र में संस्कृत का कोई सुभाषित या श्लोक, उर्दू का कोई शेर अथवा हिन्दी का कोई नवीन मुहावरा हमें अवश्य देखने को मिलता है ।

८ - नवोदित तथा प्रसिद्ध लेखकों को प्रोत्साहन तथा दाद देना :

नवयुवकों और नवोदित लेखकों को प्रोत्साहित करना तथा प्रसिद्ध साहित्यकों को दाद देना, पं० शर्माजी के व्यक्तित्व का महान्गुण था । "दाद" शब्द बराबर उनकी याद दिलाता रहता है । अपने पत्रों में कहीं वे श्री द्वारकाप्रसाद "सेवक" की "प्रवासी भारतवासी" शीर्षक पुस्तक की प्रशंसा करते हैं[2] तो कहीं साहित्यिक विनोद पर हरिशंकर शर्मा को दाद देते हैं ।[3] कहीं वियोगी हरि को "वीर सतसई" पर बधाई देते हैं[4] तो कहीं, मोहनलाल महतो "वियोगी" को "छायावादियों में आपका लिखने का ढंग अभिनन्दनीय है" कहकर प्रोत्साहित करते हैं ।[5] इससे स्पष्ट होता है कि पं० शर्मा गुणग्राही तथा प्रतिभा के पारखी थे ।

(ग) दृष्टिकोण या विचारधारा :

पं० पद्मसिंह शर्मा एक विशुद्ध साहित्यकार थे । साहित्य के प्रति उनकी अपार निष्ठा ही उन्हें राजनीति एवं समाज-सुधार आदि से

---

१ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ० १८१ ।
२ वही, पृ० १५८ ।
३ वही, पृ० ३७ ।
४ वही, पृ० १९-२० ।
५ वही, पृ० २२२-२३ ।

दूर रखती थी । उनका मत था कि साहित्य-सेवा के व्रती को व्यर्थ के पचड़ों में न पड़कर साहित्यिक कार्य निष्ठा से करना चाहिए । अपने इस दृष्टिकोण को प्रकट करते हुए उन्होंने पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को एक पत्र में लिखा है -

"भई, साहित्य-सेवा करो, और इधर आसन जमाओ । बोलपुर का "शान्ति-निकेतन" और साबरमती का "सत्याग्रह आश्रम" हिन्दी साहित्य-सेवा के लिए उपयुक्त स्थान नहीं है ।"[१]

जैसा कि पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम देख चुके हैं, शर्मा जी की महात्मा गांधी की अहिंसावादिता में आस्था बहुत कम थी । वे लोकमान्य तिलक की विचारधारा का अनुसरण करने में विश्वास रखते थे ।

पं० शर्मा जी के पत्रों में भाषा और व्याकरण-सम्बन्धी सिद्धान्तों की विस्तृत जानकारी मिलती है । आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को लिखे गये पत्रों में कई स्थलों पर व्याकरण-विषयक चर्चा मिलती है । पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी को उन्होंने लिंग-सम्बन्धी महत्वपूर्ण सिद्धांत पत्रों में लिख भेजे हैं ।[२]

आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा पत्र-लेखन कला में पारंगत थे । पं० बनारसीदास चतुर्वेदी उनको हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ पत्र-लेखक मानते हैं ।[३] भावुक सहृदयता और जिन्दादिली के कारण उनके पत्र उत्तम काव्य-सा आनन्द प्रदान करते हैं । उनकी शैली प्रभावशाली और विनोदमयी है । उर्दू के महाकवि अकबर ने उनकी पत्र-शैली की प्रशंसा करते हुए उनके नाम एक पत्र में लिखा है- "आपके ख़त को आंखें ढूंढती थीं । - - - आपकी काबलीयत और सुख़नफ़हमी ने मुझको आपका आशक़ बना दिया है ।"[४] निःसन्देह पं० शर्माजी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ पत्र-लेखक थे । उनका यह प्रिय शेर-

यूं तो होती है मुंह देखे की मुहब्बत सबको ।
मैं तो तब जानूं जब मरने के बाद मेरी याद रहे ।।

उनके पत्र-साहित्य पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होता है ।

---

१ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ० ५३ ।

२ -वही-, पृ० १७४-१७६ ।

३ पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के एक व्यक्तिगत पत्र से ।

४ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र", भूमिका पृ० ३८ ।

४ - प्रेमचन्द (१८८०-१९३६):

प्रेमचन्द का भारतीय-साहित्य में ही नहीं, विश्व-साहित्य में भी अप्रतिम स्थान है। उन्होंने अपनी अमर लेखनी से नये तथ्यों और भारतीय समाज की तत्कालीन परिस्थितियों को विस्तृत परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की अद्भुत प्रसिद्धि अर्जित की है। जैसा कि श्री गंगाप्रसाद विमल ने लिखा है-"उनकी कृतियां दो महायुद्धों के बीच के विराट मानव-सन्दर्भों की रचनाएं हैं। ये रचनाएं रचनाकाल के दृश्य संसार की संघर्षमय जीवन की सच्ची-झूठी गाथाएं ही नहीं हैं, बल्कि प्रेमचन्द के व्यक्तित्व की परिचय-कथाएं हैं। प्रेमचन्द का अपना निजी जीवन कहीं-न-कहीं उस बड़े सन्दर्भ से जुड़ा है।"[१] यद्यपि प्रेमचन्द जी के जीवन की प्रमुख घटनाएं और उनके व्यक्तित्व की विविध रेखाएं उनकी कृतियों तथा उन पर लिखी गयी-"प्रेमचन्द: कलम का सिपाही", "कलम का मजदूर प्रेमचन्द" आदि जीवनियों में उभर कर सामने आती हैं, किन्तु उनके लिखे पत्रों तथा समकालीन लेखकों द्वारा उनको लिखे गये पत्रों में उनका जीवन और व्यक्तित्व कहीं अधिक स्पष्ट रूप में झलकता है। उक्त जीवनियां भी प्रेमचन्द के पत्र-साहित्य के आधार पर ही लिखी गयी हैं।

प्रेमचन्द जी का पत्र-साहित्य :

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और पं० पद्मसिंह शर्मा की तरह मुंशी प्रेमचन्द को भी अपनी सुदीर्घ पत्रकारिता और साहित्यिक यात्रा में सहस्रों पत्र लिखने पड़े हैं। वे भी उक्त आचार्यों की परम्परा के पत्र-लेखक थे जो प्राय: सभी पत्रों का अविलम्ब उत्तर देते थे। इस सम्बन्ध में डा०-कृष्णविहारी मिश्र का निम्नांकित कथन द्रष्टव्य है -

"प्रेमचन्द जो स्वयं को क़लम का मजदूर समझते थे, दरबारी-सरकारी वातावरण से दूर रहकर सहज गृहस्थ जीवन जीने के आकांक्षी थे और सभा-समितियों की औपचारिकता से कतराते-घबराते रहते थे, सामान्य व्यक्तियों की भावनाओं का बड़ा ख्याल रखते थे। उन्हें बराबर ख्याल रहता था कि कहीं उनकी ओर से किसी की उपेक्षा न हो जाय। इसलिए

---

१ प्रेमचन्द (आज के सन्दर्भ में): १९६८, पृ० १३।

छोटे-बड़े, आत्मीय-अनात्मीय का विचार छोड़कर वे लोगों के पत्रों का जवाब देते थे, अनौपचारिक बातचीत में घण्टों अपना महत्वपूर्ण समय देते थे और उससे जीवन अर्जित करते थे। जीवन के प्रति प्रेमचन्द की इतनी प्रगाढ़ सम्पृक्ति न होती तो उनका साहित्य इतना समृद्ध न हो पाता।"[1]

इससे स्पष्ट है प्रेमचन्द जी के साहित्य-सृजन में पत्र-लेखन का योग कम महत्वपूर्ण नहीं है। उनके पत्रों का संकलन उनके सुपुत्र अमृतराय ने मदनगोपाल की सहायता से "चिट्ठी-पत्री" भाग- १,२ में किया है। प्रथम भाग में प्रेमचन्द द्वारा उनके घनिष्ठ मित्र मुंशी दयानारायण निगम को लिखे गये २८१ पत्र संकलित है। निगम साहब उर्दू के प्रसिद्ध पत्र "ज़माना" के सम्पादक थे। उनके साथ प्रेमचन्द जी की चिट्ठी-पत्री का सिलसिला सन् १९०५ ई० में आरम्भ हुआ - एक पत्र-सम्पादक और एक नये लेखक के पारस्परिक सम्बन्ध-सूत्र के रूप में। धीरे-धीरे उसने आत्मीयता का रूप लिया, जो मरते दम तक चली। इन दोनों मित्रों के स्वभाव में बुनियादी अंतर होते हुए भी एक चीज़ जो दोनों के मिज़ाज में यकसां मिलती थी, वह थी उनकी वज़ादारी जो कि पुराने ज़माने की ही एक चीज़ थी और उसके साथ ही मिट गई।[2] इस प्रकार ये पत्र इक्कीस बरस की दोस्ती की अनूठी कहानी कहते हैं।

"चिट्ठी-पत्री भाग-२" में कुलमिलाकर २८३ पत्रों का संकलन है। इसमें प्रेमचन्द के लिखे हुए पत्रों के साथ उनको लिखे गये पत्र भी संकलित है। उर्दू और अंग्रेजी में लिखे गये पत्र भी यहां देखने को मिलते हैं। उर्दू पत्र लिपि बदलकर तथा पादटिप्पणियों में कठिन शब्दों का अर्थ देकर प्रकाशित किये गये हैं और अंग्रेजी पत्र अनूदितरूप में। जिन साहित्यिकों के नाम प्रेमचन्द जी ने पत्र लिखे हैं उनमें सर्वश्री जैनेन्द्रकुमार, बनारसीदास चतुर्वेदी, विनोदशंकर व्यास, श्रीराम शर्मा, शिवपूजन सहाय, सद्गुरुशरण-अवस्थी आदि के नाम उल्लेख्य हैं। प्रेमचन्द जी को पत्र लिखनेवाले प्रमुख-

---

१ "चिट्ठियों से झांकता मुंशी प्रेमचन्द का चेहरा" (लेख), "आलोक पंथा" (१९७७), पृ० ४८-४९।

२ अमृतराय :" प्रेमचन्द-क़लम का सिपाही" (विद्यार्थी संस्करण), पृ० ९८।

साहित्यकों के नाम हैं - जैनेन्द्रकुमार, बनारसीदास चतुर्वेदी, सुदर्शन, मौलवी अब्दुल हक़, अमरनाथ झा, नरेन्द्र देव आदि । इन पत्रों से प्रेमचन्द जी के जीवन और साहित्य के विभिन्न पक्ष उजागर होते हैं ।

इन दो पत्र-संग्रहों के अतिरिक्त "उग्र" जी के नाम लिखे प्रेमचन्द जी के कुछ पत्र 'फाइल और प्रोफाइल' में संकलित हैं । इसी प्रकार जयशंकर प्रसाद और सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" को लिखे उनके पत्र क्रमश: "प्रसाद के नाम पत्र" तथा "निराला की साहित्य-साधना-३" में संकलित हैं । अमृत राय तथा मदनगोपाल द्वारा लिखे गये प्रेमचन्द्र के उक्त जीवन-चरित्रों में भी अनेक स्थलों पर प्रेमचन्द से सम्बन्धित पत्र उद्धृत किये गये हैं । डा० इन्द्रनाथ मदान ने "प्रेमचन्द : एक विवेचन " के परिशिष्ट में भी प्रेमचन्द जी के महत्वपूर्ण पत्र प्रकाशित किये हैं । श्री हंसराज रहबर लिखित "प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृतित्व" शीर्षक पुस्तक में भी प्रेमचन्द जी के कई पत्र प्रसंगोपात उद्धृत किये गये हैं । श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त ने प्रेमचन्द जी के कुछ पत्र "हंस" (अक्टूबर १९४८) में प्रकाशित किये थे । इस प्रकार प्रेमचन्द जी का पत्र-साहित्य अति व्यापक है ।

पत्रों में प्रतिबिम्बित प्रेमचन्द जी का व्यक्तित्व :

यद्यपि यह सही है कि प्रेमचन्द जी के जीवन की प्रमुख घटनाएं उनकी कथाओं में मिल जाती हैं, किन्तु फिर भी उनकी कथा-कृतियां "जीवनियां" नहीं हैं । उनमें प्रेमचन्द जी का निजी व्यक्तित्व प्रकट नहीं हुआ है । उनका वास्तविक जीवन एवं व्यक्तित्व उनके पत्रों में ही प्रतिबिम्बित है । उन्होंने पत्रों में अपने जीवन की अनेक घटनाओं का बड़ी तन्मयता से चित्रण किया है । अपने जीवन-दर्शन को भी उन्होंने पत्रों द्वारा स्पष्ट किया है । सर्व प्रथम हम पत्रों में अंकित उनकी जीवन-रेखाओं को देखेंगे ।

(क) जीवनी-सूत्र :

प्रेमचन्द जी ने मित्रों एवं आलोचकों द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में अपने व्यक्तिगत तथा साहित्यिक जीवन के अनेक सूत्र उद्घाटित किये हैं । पत्रों में प्राप्त उनके जीवनी-सूत्रों में कहीं-कहीं तारतम्यगत शिथिलता

भी प्रतीत होती है । यहां हम मुख्य-मुख्य सूत्रों का परिचय दे रहे हैं ।

१ - जन्मकाल और जन्मस्थान :

प्रेमचन्द जी ने सबसे पहले अपने जीवन का संक्षिप्त वृत्तांत अपने परम मित्र मुंशी दयानारायण निगम को १७ जुलाई १९२६ के पत्र में लिख भेजा था । उन्होंने लिखा था -" - - - - मेरे हालात नोट कर लें । तारीख पैदाइश संवत् १९३७ । बाप का नाम मुंशी अजायब लाल । सुकूनत मौजा मढ़वां, लमही । मुत्तसिल पाण्डेपुर । बनारस ।[1] इसके बाद उन्होंने अपने जन्मकाल एवं जन्मस्थान की सूचना ७ अप्रैल १९२७ को विनोद-शंकर व्यास के नाम लिखे पत्र में दी है, जो इस प्रकार है -" रही मेरी जन्म की तिथि आदि । मेरा जन्म सं० १९३७ में हुआ । काशी के उत्तर की ओर पांडेपुर के निकट लमही ग्राम का निवासी हूं ।"[2] इस प्रकार प्रेमचन्दजी के जन्मकाल और जन्मस्थान का प्रामाणिक विवरण उन्हीं के द्वारा प्राप्त हो जाता है ।

२ - बचपन और शिक्षा :

अपने बचपन के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी ने डा० इन्द्रनाथ मदान को लिखा है कि -" बचपन में मेरे ऊपर मेरे घर का जो प्रभाव पड़ा है वह बिलकुल मामूली है । न तो उसे बहुत अच्छा ही कहा जा सकता है और न बुरा ही । जब मैं आठ वर्ष का था तभी मेरी मां चली गई । उससे पहले की स्मृति बड़ी धुंधली है ।"[3] इस प्रकार प्रेमचन्द जी को बचपन में ही माता का वियोग सहन करना पड़ा था । इस वियोग प्रभाव उनकी " प्रेरणा", "घर जमाई", आदि कहानियों में स्पष्टतः दिखाई पड़ता है । "कर्मभूमि"

---

१ " चिट्ठि-पत्री भाग-१ " (१९६२), पृ० १६१ ।

२ - वही, भाग-२, पृ० १८२ ।

३ " प्रेमचन्द : एक विवेचन " (१९६८), परिशिष्ट-ख, पृ० १४६ ।

उपन्यास का अमरकांत भी बचपन में मां के स्नेह से वंचित हो जाता है ।

अपनी शिक्षा के सम्बन्ध में जानकारी देते हुए प्रेमचन्द जी ने निगम साहब को लिखा है -" इब्तदाअन आठ साल तक फारसी पढ़ी । फिर अंग्रेजी शुरू की । बनारस के कालेजिएट स्कूल से एन्ट्रेन्स पास किया । वालिद का इन्तकाल पंद्रह साल की उम्र में हो गया । वालिदा सातवें साल गुजर चुकी थी ।"[1] इससे स्पष्ट है कि प्रेमचन्द जी ने महाविद्यालय की शिक्षा नहीं प्राप्त की थी, फिर भी जीवन को व्यापक अनुभव से उन्होंने बहुत-कुछ सीख लिया था ।

इस पत्र में प्रेमचन्द जी ने अपनी मां के निधन की सूचना डा० मदान को प्रेषित से एक साल पहले की दी है । श्री हंसराज रहबर ने निगम साहब के पत्र का अनुसरण किया है जब कि मदनगोपाल ने "कलम का मजदूर प्रेमचन्द " में लिखा है कि जब धनपतराय की आयु सात या आठवर्ष की थी, आनन्दीदेवी बीमार पड़ी ।[2] इस प्रकार यह निश्चित है कि सात-आठ वर्ष की अवस्था में प्रेमचन्द जी मातृस्नेह से वंचित हो गये थे ।

३ - साहित्यिक जीवन का आरम्भ :

प्रेमचन्द जी के साहित्य का इतिहास हमारे देश के राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तनों का इतिहास है । इसके आरम्भ के सम्बन्ध में उन्होंने निगम साहब के नाम प्रेषित पत्र में लिखा है -" - - - सन् १९०१-ई० से लिटरेरी जिन्दगी शुरू की । रिसाला जमाना में लिखता रहा । कई साल तक मुतफर्रिक मजामीन लिखे । सन् १९०४ में एक हिन्दी नाविल प्रेमा लिखकर इण्डियन प्रेस से छपाया कराया ।"[3]

श्री विनोदशंकर व्यास[4] को लिखे पत्र में "प्रेमा" उपन्यास का रचनाकाल १९०० बताया गया है । डा० इन्द्रनाथ मदान के प्रश्नों का

---

१ "चिट्ठी-पत्री भाग-१" (१९६२), पृ० १९१ ।
२ "कलम का मजदूर प्रेमचन्द" (१९६५), पृ० १३ ।
३ "चिट्ठी-पत्री भाग- १" (१९६२) , पृ० १९१-९२।
४ -वही-, भाग-२, पृ० १८२ ।

उत्तर देते हुए उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ के सम्बन्ध में लिखा है कि -" मेरा पहला लेख १६०१ में छपा और पहली पुस्तक १६०३ में ।"[1]

उपर्युक्त तीनों पत्रों में भिन्न-भिन्न तिथियाँ दी गयी हैं । अत: प्रेमचन्द जी ने कब और कहां लिखना आरम्भ किया, इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है ।

४ - नाम-उपनाम :

प्रेमचन्द जी का मूल नाम धनपत राय था । उनके पिता प्यार से उन्हें "नवाब" के नाम से पुकारा करतेथे । अत: अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ में वे "नवाबराय" नाम से लिखते थे । परंतु जब"सोज़े-वतन" की ज़ब्ताज़ब्ती के बाद उनके अफसरों ने म उन्हें लिखने और किताबें छापने की मनाही कर दी तो उनको यह नाम छोड़ना पड़ा । मुंशी दयानारायण निगम ने उनको "प्रेमचन्द" के नाम से लिखने का पत्र द्वारा अनुरोध किया था । इस पत्र के उत्तर में उन्होंने मुंशी जी को लिखा था :-

"प्रेमचन्द" अच्छा नाम है, मुझे भी पसन्द है । अफसोस सिर्फ यह है कि पांच-छ: साल में "नवाबराय" को फरोग देने - (प्रसिद्ध करने) की जो मेहनत की गई, वह सब अकारथ गई ।"[2]

इस प्रकार रिवाज़ के मुताबिक प्रेमचन्द जी का नाम धनपतराय था । उनके पिता जी उन्हें दुलार से "नवाब" कहते थे । अत: प्रेमचन्द जी इसे अपना उपनाम बनाकर देर तक "नवाबराय" के नाम से लिखते रहे । बाद में वे "प्रेमचन्द" बन गये । यह नाम आज विश्व-साहित्य में अमर है ।

५- उर्दू से हिन्दी क्षेत्र में प्रवेश :

बाबू बालमुकुन्द गुप्त के समान मुंशी प्रेमचन्द ने भी अपना

---

१ "प्रेमचन्द : एक विवेचन " (१६६८), पृ० १४५ ।

२ "प्रेमचन्द: जीवन, कला और कृतित्व " (१६६२), हंसराज रहबर, पृ० ४६ ।

साहित्यिक जीवन उर्दू से आरम्भ किया था । परन्तु उन्हें अपनी रचनाओं से आमदनी नहीं के बराबर होती थी । "बाजारे हुस्न" अर्थात् "सेवा-सदन" उपन्यास उन्होंने उर्दू में लिखा था । प्रकाशित पहले हिन्दी में हुआ । कलकत्ता पुस्तक एजेंसी ने उसके पहले ~~हिन्दी-में-हुआ~~ संस्करण के लिए एक मुश्त चार सौ रुपये दिये । प्रेमचन्द को अपने साहित्यिक जीवन में इतनी बड़ी रकम पहली बार मिली थी । इसी कारण उनका झुकाव हिन्दी की ओर हुआ । १ सितम्बर १९१५ को बस्ती से उन्होंने सम्पादक "ज़माना" के नाम एक पत्र लिखा -

"- - - - अब हिन्दी लिखने की मश्क भी कर रहा हूं । उर्दू में अब गुज़र नहीं है । यह मालूम होता है कि बालमुकुन्द गुप्त मरहूम की तरह मैं भी हिन्दी लिखने में ज़िन्दगी सर्फ कर दूंगा[1] । उर्दूनवीसी में किस हिन्दू को फ़ैज़ हुआ है जो मुझे हो जायेगा ।"

इससे प्रकट होता है कि हिन्दी में उर्दू की अपेक्षा प्रेमचन्द जी को पैसे और प्रसिद्ध अधिक प्राप्त हुई, अतः उन्होंने हिन्दी में साहित्य-सृजन पर अपना ध्यान केन्द्रित किया ।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

प्रेमचन्द जी एक सजग और सचेत साहित्यकार थे । उनके चरित्र में प्रौढ़ता और दृढ़ता थी जो निश्चय ही अनुभव और क्रियाशीलता से उत्पन्न हुई थी । पत्रों के प्रकाश में उनके चरित्र की निम्नांकित विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं :-

१ - कर्मठता :

प्रेमचन्द जी एक कर्मशील व्यक्ति थे । कर्तव्यपरायणता उनके जीवन का मूल मन्त्र था । वे जीवन भर परिस्थितियों से संघर्ष करते रहे । डा० इन्द्रनाथ मदान के नाम लिखे एक पत्र में उन्होंने सूचित किया है - "जीवन मेरे लिए अनवरत कार्य रहा है । जब मैं सरकारी नौकर था तब भी

---

१ "चिट्ठी-पत्री भाग-१" (१९६२), पृ० ४६ ।

मेरा सारा समय साहित्य-रचना में लगता था । मैं काम करने में आनन्द पाता हूं ।"[1] इसी प्रकार कार्यमय जीवन व्यतीत करने तथा संघर्षों से जूझने का संकेत करते हुए उन्होंने जैनेन्द्रकुमार को लिखा है :-

" भाई, यह संसार चुपके से रामभरोसे बैठनेवाले के लिए नहीं है । यहां तो अंत समय तक (खटना) और लड़ना है ।"[2]

प्रेमचन्द जी के इन पत्रों से ज्ञात होता है कि वे कर्ममय जीवन में विश्वास रखते थे ।

२ - भावुकता से यथार्थवादिता की ओर झुकाव :

प्रेमचन्द जी के पत्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे अपने प्रारम्भिक जीवन में अत्यधिक भावुक थे, परन्तु संघर्षमय जीवन के कारण उनका यथार्थवादिता की ओर झुकाव हुआ । इस सम्बन्ध में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे १४ नवम्बर १६३२ के पत्र का निम्नलिखित अंश दृष्टव्य है :-

"एक समय ऐसा था जब किसीकी एक अमित्रतापूर्ण चोट से रात की रात जागता रह जाता था, आंखों की नींद उड़ जाती थी । मगर अब वह हालत गुजर चुकी है और मैं अपने आपको पहले से कहीं ज्यादा अच्छीतरह जानता हूं ।"[3]

जीवन के कड़वे अनुभवों से वे कितने सहिष्णु और वज्रहृदय बन गये थे, इसका पता हमें जैनन्द्रकुमार के नाम लिखित १७ जनवरी १६३३ के पत्र से चलता है । यह पत्र जैनेन्द्रकुमार के बच्चे की मृत्यु के समाचार पढ़ने के बाद लिखा गया है । देखिए-

"बच्चा चला गया । खत पढ़ते ही पहले तो कलेजा सन्न हो गया, लेकिन फिर मन शांत हो गया । यही जीवन के कड़वे अनुभव हैं । इन्हें झेले जाओ तो सब कुछ सरल हो जाता है । - - - तुम रोये नहीं,[4] इससे मेरा चित्त बहुत शांत हुआ । तुम यहां होते तो तुम्हारी पीठ ठोंकता।

---

१ "प्रेमचन्द : एक विवेचन" (१६६८), पृ० १४८ ।

२ "चिट्ठी-पत्री भाग-२", पृ० ३५ ।

३ -वही-, पृ० ८० ।

४ -वही-, पृ० २६ ।

३ - संकोचशील स्वभाव :

प्रेमचन्द जी का स्वभाव संकोचशील था । वे सभा-समारम्भों में बहुत कम जाते थे । वे अपने स्वभाव से भली प्रकार परिचित थे । इस प्रकार की प्रकृति के कारण उनको बहुत सहन करना पड़ा था । अत: जैनेन्द्रकुमार को सलाह देते हुए लिखते हैं :

"यहां मैं-पू और मेरे जैसे शर्मीले आदमियों का गुजारा नहीं । उनके लिए तो कोई स्थान ही नहीं । तुम अपने में यह ऐब न आने दो ।[1]

इस पत्रांश से प्रेमचन्द जी के स्वभाव तथा जैनेन्द्रकुमार के साथ उनके घनिष्ठ सम्बन्ध पर प्रकाश पड़ता है ।

४ - विनोदशीलता :

स्वभाव से शर्मीले होते हुए भी प्रेमचन्दजी विनोद-प्रिय व्यक्ति थे । वे कहकहे लगाकर हंसते थे । इसी कारण उनके मित्रों ने उनका नाम "बम्बूक" (बहुत हंसने और कहकहे लगाने वाला) रखा था । उनके पत्रों भी हमें उनके विनोदी स्वभाव की स्पष्ट झलक मिल जाती है । जैसे, जैनेन्द्रकुमार को पुत्र-जन्म पर बधाई-पत्र भेजते हुए लिखते हैं :-

"पुत्र मुबारक । ईश्वर चिरायु करें । या यों कहूं, चिरायु हो । मैं तो पुराने ख्याल का आदमी हूं । दो पुत्रों तक तो बधाई दूंगा, इसके बाद ज़रा सोचूंगा ।"[2]

जैनेन्द्रजी को ही लिखे गये एक अन्य पत्र के "पुनश्च" में कहते हैं- "तुम अपना तौलिया यहां छोड़ गये जिससे बन्दा देह पोंछता है ।"[3] इसी प्रकार २४ अगस्त १९३३ को पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखे पत्र के पुनश्च" में लिखते हैं :-

"आप अपना घर क्यों नहीं बसाते, संन्यास ले रहे हैं जबकि आपको गृहस्थ होना चाहिए । भला हो विधवाविवाह का - - -"[4]

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि प्रेमचन्द जी विनोदशील व्यक्ति थे ।

---

१ "चिट्ठी-पत्री भाग-२", (१९६२), पृ० ३५ ।
२ -वही-, पृ० १३ ।
३ -वही-, पृ० २१ ।
४ -वही-, पृ० ८७ ।

५ - स्पष्टवादिता :

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं पं० पद्मसिंह शर्मा के समान प्रेमचन्द जी भी स्पष्टवक्ता साहित्यकार थे । धुरंधर साहित्यिकों की पुस्तकों की आलोचना भी वे स्पष्ट शब्दों में और बड़ी निर्भयता से करते थे । जयशंकर प्रसाद की पुस्तक "समुद्रगुप्त" की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा था कि - इसमें गड़े-मुर्दे उखाड़े गये हैं ।[१] इसी प्रकार जैनेन्द्रकुमार की "सुनीता" पर अपनी सम्मति प्रकट करते हुए एक पत्र में लिखा था - "सुनीता ध्वजाधारिणी बने, इसमें कोई हर्ज नहीं, नहीं वह गौरव की बात है । उसके लिए और देश के लिए भी । लेकिन हरिप्रसन्न के मन में यह कुत्सित भावना क्यों ? ध्वजा-धारिणी के पद से गिराकर उसे व्यभिचारिणी के पद पर क्यों लाना चाहता है ?"[२]

जैनेन्द्रकुमार प्रेमचन्द जी के अभिन्न मित्र थे, तथापि प्रेमचन्द जी उनकी कृतियों की स्पष्ट और निष्पक्ष आलोचना करने तथा उनकी भूलों को साफ़ शब्दों में व्यक्त करने में संकोच न रखते थे । १७ जुलाई १९३३ के पत्र में मीठी भिड़की देते हुए वे जैनेन्द्र जी को लिखते हैं:-

प्रिय जैनेन्द्र ,

आदाबअर्ज । भई वाह ! मानता हूं । जून गया, जुलाई गया और अगस्त का मैटर भी जानेवाला है । जुलाई बीस तक निकल जायगा । लेकिन हजूर को याद ही नहीं । क्यों याद आये । बड़े आदमी होने में यही तो ऐब है । रुपये तो अभी कहीं मिले नहीं । लेकिन यश तो मिल ही गया है और यश के धनी धन के धनी से क्या कुछ कम मगरूर और भुलक्कड़ होते हैं ?"[३]

इस प्रकार प्रेमचन्द जी जो दिल में आये वह साफ-साफ बता देते थे ।

६ - नवोदित कथाकारों एवं लेखकों को प्रोत्साहन :

प्रेमचन्द जी ने अपने पत्रों से अनेक नवोदित कथाकारों तथा लेखकों को प्रोत्साहन दिया है । जैसे उपेन्द्रनाथ अश्क को २५-२-१९३२ के

---

१ "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६), पृ० ९१ ।
२ "चिट्ठी-पत्री भाग-२" (१९६२), पृ० ९२ । ३- -वही-, पृ० ३२ ।

पत्र में सलाह देते हुए लिखते हैं-" मगर मेरी सलाह तो यही है कि अभी ज्यादा लिखने के मुकाबले में लिटरेचर और फिलासफी का अध्ययन करते जाओ, क्योंकि इस वक्त का अध्ययन जिन्दगी भर के लिए उपयोगी होगा।[1] इसी प्रकार विष्णु प्रभाकर को हिदायत देते हैं कि - गल्प में संभाषण का भाग (अधिक), वर्णन कम होना चाहिए ।"[2] इन पत्रांशों से प्रकट होता है कि प्रेमचन्दजी युगनिर्माता साहित्यकार थे ।

(ग) दृष्टिकोण अथवा विचारधारा :

प्रेमचन्द जी अपने को कलम का मजदूर मानते थे । वे सामाजिक विकास में विश्वास रखते थे । उनकी दृष्टि में विकास के लिए लोगों का चरित्र ही निर्णायक तत्व है । कोई समाज-व्यवस्था नहीं पनप सकती जब तक कि हम व्यक्तिशः उन्नत न हों[3] । उनके विचार में आदर्श समाज वह है जिसमें सबको समान अवसर मिले ।

प्रेमचन्दजी साहित्य-सर्जन में प्रतिभा को सर्वोपरि मानते थे । उषादेवी मित्रा के नाम पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिखा है-" - - - असली चीज़ प्रतिभा है । यदि आपमें वह है तो मैं या कोई दूसरा मनुष्य चाहे आपका स्वागत न करें, वह आप अपना मार्ग निकाल लेगी ।"[4]

अपने ऊपर किन-किन विदेशी साहित्यकारों का प्रभाव पड़ा है, इसकी स्पष्टता करते हुए उन्होंने एक पत्र में कहा है कि -"मेरे[5] ऊपर टाल्सटाय , विक्टर ह्यूगो और रोम रोलां का असर पड़ा है । अपनी शैली के सम्बन्ध में उन्होंने जैनेन्द्रकुमार को लिखा था[6] कि -" मैं पुराना हो गया हूं और पुरानी शैली निभाये जाता हूं ।"इस प्रकार पत्रों में प्रेमचन्द जी की विचारधारा का विशद परिचय मिलता है ।

प्रेमचन्द जी के पत्र सीधे-सादे ढंग से लिखे गये हैं । अमृतराय के शब्दों में"इनमें किसी तरह की बनावट या तकल्लुफ नहीं है, कागज़-कलम उठाया और लिख मारी एक चिट्ठी जैसे आमने-सामने बैठ बातें कर रहे हैं।"[7] इसी कारण उनके पत्र उनके व्यक्तित्व के दर्पण और समकालीन साहित्य के दस्तावेज़ हैं ।

---

१ "चिट्ठी-पत्री-२", पृ० २३८ । २ वही, पृ० २४३, ३ वही, पृ० २३७ ।
४ वही, पृ० १६४ । ५- वही, पृ० २३६ । ६- वही, पृ० १३ ।
७ वही, भाग-१, भूमिका, पृ० ५ ।

५ - बनारसीदास चतुर्वेदी (१८८२ ई०) :

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी एक प्रबुद्ध साहित्यकार, यशस्वी पत्रकार, कुशल पत्र-लेखक और लब्धप्रतिष्ठ पत्र-संग्राहक हैं । हिन्दी पत्र-साहित्य में उनका नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है । राष्ट्रकवि "दिनकर" के शब्दों में "चतुर्वेदी जी हिन्दी में शायद एक ही पत्र-लेखक हैं।"[1] जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, हिन्दी में पत्र-साहित्य के महत्व को प्रतिष्ठित कर परिश्रमपूर्वक विधिवत् प्रकाश में लाने का श्रेय उन्हीं को है ।[2] अनेक विद्वान् उनको पत्र-विधा का पुरस्कर्ता मानते हैं। उन्होंने इस विधा के विकास की ओर न केवल स्वयं ध्यान दिया, अपितु अन्य अनेक व्यक्तियों को भी इस कार्य की प्रेरणा दी । उन्हीं के परिश्रम और प्रयास से हिन्दी में पत्र-साहित्य का स्तरीय विकास हुआ है ।

चतुर्वेदी जी का पत्र-साहित्य :

हिन्दी साहित्यकारों में जितने पत्र पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखे और पाये हैं, उतने किसी ने नहीं । इस सम्बन्ध में श्री सीताराम सेकसरिया ने बहुत उपयुक्त कहा है कि -" चतुर्वेदी ने शायद जितने पत्र लिखे हैं, जितने लोगों को लिखे हैं तथा जितने कामों और विषयों के लिए लिखे हैं, उतने किसी और ने लिखे हों, मैं नहीं जानता ।"[3] पं०-चतुर्वेदी जी ने बाबू वृन्दावनदास के नाम प्रेषित अपने २०-१२-१९६१ के

---

१ " पूज्य और वरेण्य (लेख)," प्रेरक साधक" (१९७०), पृ० ३० ।

२ (क) डा० आदित्यनाथ झा :"अभिनन्दिनी" (संपा० रमेशचन्द्र दुबे)पृ० ४५ ।
"हिन्दी में पत्र-साहित्य के महत्व को दिग्दर्शित करनेवाले वे शीर्षस्थ साहित्यकार हैं ।"

(ख) पं० रामशंकर द्विवेदी :"हिन्दी में पत्र-साहित्य"(लेख),
परिषद पत्रिका, जनवरी १९७२, पृ० ९० ।
" इस विधा की ओर सर्वप्रथम ध्यान पं० बनारसीदास चतुर्वेदी का गया ।"

३ "जैसा मैंने देखा" (लेख), " प्रेरक साधक"
(१९७०), पृ० ६४ ।

पत्र में सूचित किया है कि उन्होंने कम से कम एक लाख चिट्ठियां तो लिखी ही होंगी ।[1]

पत्र-व्यवहार चतुर्वेदी का प्रिय व्यसन रहा है ।[2] इस मनोरंजक व्यसन पर उन्होंने कई पत्रिकाओं में सुंदर लेख भी लिखे हैं । प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक को एक पत्र द्वारा उन्होंने यह सूचना भी दी है कि वे "पत्र-व्यवहार मेरा व्यसन"[3] नामक एक पुस्तक लिखना चाहते थे, किन्तु व्यस्ततावश नहीं लिख पाये । अपने साहित्यिक मित्रों को लिखे पत्रों में भी उन्होंने[4] यत्र-तत्र अपने इस रोचक व्यसन की बड़े लाक्षणिक ढंग से चर्चा की है । श्री-श्यामसुन्दर खत्री ने उनके इस मनोरम व्यसन की झलक इस प्रकार प्रस्तुत की है :-

"चार बजे उठ भोर को लिखने लगते पत्र ।
किन्हें कहां कैसे कहें ? यत्र तत्र सर्वत्र ।।"[5]

---

१ "डा० बनारसीदास चतुर्वेदी चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ० १११ ।

२ देखिए:

(क) "पत्र व्यवहार- एक मनोरंजक व्यसन", "विशाल भारत", सित० १९५१।

(ख) "पत्रव्यवहार मेरा व्यसन", "लोकशिक्षक", मार्च १९७७, पृ० ३ ।

३ शोधकर्ता को लिखित २८-७-१९७८ का पत्र ।

४. (क) पं० झाबरमल्ल शर्मा को लिखित २०-६-१९७० का पत्र :

"प्रात:काल ४, ४।। बजे उठकर चाय बनाकर पीना और तत्पश्चात् कुछ स्वाध्याय और फिर पत्र-व्यवहार का व्यसन ।

-"डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र", पृ० २५८ ।

(ख) बाबू वृन्दावनदास को लिखित १४-८-१९६८ का पत्र :

"पत्रों की दृष्टि से मैं लखपती हूं । सौ वर्ष बाद उन पत्रों का मूल्य इतना तो हो ही जायेगा ।"

-वही-, पृ० ७८ ।

(ग) पं० रामनारायण उपाध्याय को लिखित १२-१-१९६१ का पत्र :

"बात दर असल यह है कि पत्र-व्यवहार मेरे लिए व्यसन हो गया है और बावजूद घोर प्रयत्नों के मैं उसे छोड़ नहीं पाता ।"

- प्रेरक साधक, पृ० ५३१ ।

५ "लोकशिक्षक", १५ दिसम्बर, १९७६, पृ० ४ ।

अपनी दीर्घकालीन पत्रकारिता और अपने शुष्क-एकाकी जीवन में कुछ रस लाने के लिए चतुर्वेदी जी को पत्र-व्यवहार का आश्रय लेना पड़ा। फिर तो वह उनके लिए रचनात्मक कार्य (Creation) और विश्राम (Recreation) दोनों का काम देने लगा । परदु:खकातर महापुरुषों के सम्पर्क-सान्निध्य के कारण[१] वे अपनी अस्वस्थ अवस्था में भी पत्र लिखे बिना नहीं रह सकते ।

हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारों के पत्र प्राप्त करने के लिए चतुर्वेदी जी ने एक पत्र-लेखन-मण्डल या पत्र-व्यवहार गोष्ठी की स्थापना की थी । आचार्य शिवपूजन सहाय इस मण्डल के सक्रिय सदस्य थे । डा० वासुदेवशरण अग्रवाल भी इस गोष्ठी में समय-समय पर अपना बहुमूल्य सहयोग देते थे । उन्होंने पत्र-लेखन-मण्डल के माध्यम से तथा अपने प्रिय व्यसन के द्वारा अनेक मूर्धन्य साहित्यकारों तथा महापुरुषों के मूल्यवान पत्र प्राप्त किये हैं ।

चतुर्वेदी जी का पत्र-संग्रहालय अगाध है । इसमें छोटे-बड़े विद्वान्, विचारक, लेखक, समाज-सेवक, पत्रकार, राजनीतिज्ञ, साहित्यकार आदि अनेक व्यक्तियों के बहुमूल्य पत्र संगृहीत हैं । प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक को शोध-यात्रा के सिलसिले में हिन्दी के चिन्तनशील कवि डा० त्रिलोकीनाथ ब्रजबाल की प्रेरणा से चतुर्वेदी जी का पत्र-संग्रहालय देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । यद्यपि उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण पत्र राष्ट्रीय अभिलेखागार,

---

१ (क) "मुझे लेटे रहने के लिए कहा गया है, फिर भी आप जैसे सुहृदों को पत्र लिखे बिना नहीं रह सकता ।"

-बाबू वृन्दावनदास के नाम लिखे पत्र का अंश ।

(डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र", पृ० ७१)

(ख) "तुर्गनेव जब मरणासन्न थे, तब भी उन्होंने किसी युवक ग्रंथकार के लिए सिफारिशी चिट्ठी किसी प्रकाशक को लिख दी थी और स्टीफन ज़्विग भी इसी आदर्श का पालन करते थे । रोम्यां रोलां को भी सहस्रों पत्र लिखने पड़े थे । मैं इन तीनों का प्रशंसक हूं, इस लिए यह सम्भव नहीं कि मैं किसी संकटग्रस्त सज्जन के पत्र का उत्तर न दूं ।"

- पं० रामनारायण उपाध्याय के नाम लिखे पत्र का अंश ।

("प्रेरक साधक", पृ० ५३१)

दिल्ली में सुरक्षित करा दिये हैं, तथापि उनकी प्रतिलिपियां, प्रकाशित प्रतियां, फोटो-प्रति-प्रतिलिपियां उनके पास संरक्षित हैं । इस संग्रह को देखने पर श्री विष्णु प्रभाकर के इस कथन का स्मरण हो आया कि- "महापुरुषों और प्रियजनों के पत्रों का संग्रह तो अद्भुत है । भारतभर में इतना सुन्दर और इतना विशाल संग्रह कहीं भी न होगा ।"[1]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के नाम लिखे २७-७-१९६६ के पत्र में चतुर्वेदी जी ने अपने पत्र-संग्रहालय में किन-किन विभूतियों के कितने पत्र हैं, इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया है :-

"-महात्मा गांधी के १०१ मूल पत्रों के १८७ पृष्ठ मेरे संग्रहालय में सुरक्षित हैं ।

- दीनबन्धु सी० एफ एन्ड्रयूज की १९२१ तक की सम्पूर्ण सामग्री-पचासों पत्र ।
- रोम्यां रोलां के तीन पत्र ।
- भारत के सवश्रेष्ठ पत्र-लेखक श्रीनिवास शास्त्री के ४० पत्र ।
- मौलवी अब्दुल हक् साहब के ४० पत्र ।
- आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के ७० पत्र ।
- "नवीन" जी के ९ पत्र ।
- प्रेमचन्द जी के २० पत्र ।
- श्रीधर पाठक के जीवन-चरित्र की सामग्री ।
- स्व० गुप्त बन्धुओं के दर्जनों पत्र ।
- हरिशंकर शर्मा के ३०० पत्र ।
- वंशीधर जी के ३०० पत्र । - स्वयं आपके सभी पत्र ।

स्व० वासुदेवशरण जी, मुंशी अजमेरी जी, माखनलाल जी, पीर मुहम्मद युनिस, शिवपूजन सहायजी, सैयद अमीर अली मीर प्रभृति के पत्र छपवा चुका हूं । अन्य लेखकों के सहस्रों पत्र हैं ।"[2]

----

१ "वह लभ्य प्रेम" (लेख), "प्रेरक साधक" (१९७०), पृ० ५० ।

२ "प्रेरक साधक" (१९७०), पृ० ५५९ ।

ये पत्र चतुर्वेदी जी के उदात्त व्यक्तित्व और उनकी सशक्त लेखनी के ज्वलन्त प्रमाण हैं । श्री श्यामसुन्दर खत्री ने ठीक ही कहा है-

"बड़े-बड़े भी हो गये सहजों उनके मित्र, उनके पत्रों में भरी ऐसी शक्ति विचित्र ।"[2]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामधारीसिंह दिनकर, अक्षयकुमार जैन, सत्येन्द्र, प्रभुदयाल मीतल, प्रभाकर माचवे आदि साहित्यकारों के नाम लिखे गये चतुर्वेदी जी के पत्रों का स्वतंत्र संग्रह -"डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" बाबू वृन्दावनदास की संपादकता में प्रकाशित हो चुका है । इसमें कुलमिलाकर २२१ पत्र संकलित हैं । ये पत्र चतुर्वेदी जी के शुभ्र विचारों के दर्पण हैं ।

उपर्युक्त स्वतंत्र पत्र-संग्रह के अतिरिक्त "चिट्ठी-पत्री भाग-२", "फाइल और प्रोफाइल", "प्रसाद के नाम पत्र", "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" आदि पत्र-संग्रहों में भी चतुर्वेदी जी के कई बहुमूल्य पत्र संकलित हैं । उनके अनेक प्रेरक पत्र उन्हें भेंट किये गये अभिनन्दन-ग्रंथ "प्रेरक-साधक" में प्रकाशित हैं । "ब्रजभारती", "लोक शिक्षक", "फीरोजाबाद - संदेश" "कादम्बिनी" आदि पत्रिकाओं में भी समय-समय पर भ उनके पत्र प्रकाशित होते रहे हैं । इस प्रकार हिन्दी साहित्यकारों में चतुर्वेदीजी का पत्र-साहित्य सबसे विशाल है ।

पत्रों में प्रतिबिम्बित चतुर्वेदी जी का व्यक्तित्व :

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने छपने के ख्याल से पत्र नहीं लिखे हैं । अत: उनके पत्रों में उनके जीवन की अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ तथा उनके चरित्र की प्राय: सभी विशेषताएँ मूर्तिमन्त हो उठी हैं । यहां हम पहले पत्रों द्वारा उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं का परिचय प्राप्त करेंगे ।

---

२ "लोक शिक्षक", १५ दिसम्बर, १९७६, पृ० ४ ।

(क) जीवनी-सूत्र :

चतुर्वेदी जी के दीर्घ जीवन में अनेक कटु-मधुर घटनाएं घटी है, जिन पर एक स्वतंत्र ग्रंथ लिखा जा सकता है। यहां हम उनके जीवन की दो-तीन प्रमुख घटनाओं पर ही उनके पत्रों के माध्यम से प्रकाश डाल रहे हैं।

१- साहित्यिक जीवन का आरम्भ :

चतुर्वेदीजी की साहित्य-साधना का आरम्भ द्विवेदी-युग में ही हो चुका था, किन्तु साहित्यिक जगत् में उनको विशेष प्रसिद्धि "विशाल-भारत" के सम्पादक बनने के बाद प्राप्त हुई है। आज भी वे बड़ी निष्ठा से साहित्य की सेवा कर रहे हैं। अपने साहित्यिक जीवन का रोचक विवरण उन्होंने अक्षयकुमार जैन को लिखे २४-१२-१९७० के पत्र में किया है। वे लिखते हैं :

" - - - मैंने सन् १९१२ में लिखना शुरू किया था और कलम घसीटते-घसीटते अब ५० वीं वर्ष चल रही है।

मैं जानता हूं कि हिन्दी के पाठक अबतक तंग आ चुके होंगे, पर क्या किया जाय ?"[1]

इस प्रकार सन् १९१२ से अब तक अनवरत रूप से वे साहित्य-सेवा में लग्न-रत हैं।

२- जाति से बहिष्कृत होने की घटना :

बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक के प्रारम्भ में चतुर्वेदी जी पूर्व अफ्रीका गये थे। वे शाकाहारी भोजन, जो शुद्धता के साथ बनाया गया हो, चाहे जिस भले मानस के यहां कर लेते थे। उन दिनों वह भी एक भयंकर अपराध माना जाता था। अतः उनको जाति से बहिष्कृत कर दिया गया था। इस घटना वर्णन करते हुए वे युगलकिशोर चतुर्वेदी को लिखते हैं :

"पूर्व अफ्रीका से लौटने के बाद मैं जाति से बहिष्कृत कर दिया गया था। जनेऊ फिर कराना पड़ा और गंगा स्नान के लिए प्रयाग भी जाना पड़ा। यह बात शायद १९२५ की है। अब उस घटना पर स्वयं मुझे हंसी आती है।"[2]

---

१ "डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ० २०८।

२ -वही-, पृ० २१८ ।

३- पत्नी की आकस्मिक मृत्यु:

चतुर्वेदी जी एक संवेदनशील साहित्यिक हैं । किसी भी संवेदनशील साहित्यिक के लिए अपनी पत्नी की आकस्मिक मृत्यु एक असह्य घटना बन जाती है । इस घटना के सम्बन्ध में चतुर्वेदी की व्यथित मनोदशा का दर्शन हमें बाबू वृन्दावनदास को लिखित २६-१२-७० के पत्र में होता है । इस पत्र का एक अंश यहां हम उद्धृत करते हैं :-

"मेरी पत्नी की आकस्मिक मृत्यु सन् १६३० में हो गई, जबकि मैं कुल जमा ३८ वर्ष का ही था । उससे मेरा सम्पूर्ण जीवन ही अस्त-व्यस्त हो गया ।"[१]

इससे प्रकट होता है कि इस घटना से चतुर्वेदी जी को गहरा आघात पहुंचा था । उनके "सम्पादक की समाधि" शीर्षक रेखाचित्र में भी इस घटना का हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है ।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

चतुर्वेदी के पत्रों में उनके चरित्र के अनेक पहलू उजागर हुए हैं । उनको लिखे गये अन्य व्यक्तियों के पत्रों में भी उनके चरित्र की रेखाएं उभरकर सामने आती हैं । उन्होंने अपने नाम आये पत्रों को हूबहू प्रकाशित किया है । अत: उनके प्रकृत चरित्र का चित्र पत्रों के पृष्ठ पर ही अंकित है ।

१ - ~~सरलि~~ साहसिकता और निर्भयता :

चतुर्वेदी जी एक साहसिक एवं निर्भीक साहित्य-सेवी है । उनकी साहसिकता एवं निर्भयता का विशद परिचय उनके द्वारा चलाये गये विविध साहित्यिक आन्दोलनों में प्राप्त होता है । उनकी साहसिकता तथा निर्भयता की झांकी प्रसाद जी के नाम लिखे २४-६-१६२८ के पत्र के निम्नांकित अंश में भी मिलती हैं -

"कृपया इस भ्रम को दूर कर दीजिए कि मैं छायावाद का अथवा आपका विरोधी हूं । यदि होता तो अवश्यमेव खुल्लमखुल्ला विरोध करता ।"[२]

१ "डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१६७१), पृ० १७२ ।
२ "प्रसाद के नाम पत्र" (१६७६), पृ० ६८ ।

चतुर्वेदी जी ने स्वर्गीय "नवीन" जी के फक्कड़पन से भरे पत्रों को ज्यों के त्यों प्रकाशित कर निःसन्देह ही एक साहसिक कदम उठाया है। उनसे हुई एक भेंट-वार्ता में प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक द्वारा यह पूछे जाने पर कि स्व० नवीन जी के पत्र प्रकाशित होने से पाठकों के मनमें आपके चरित्र के प्रति घोर आशंका उत्पन्न हो जायेगी यह जानते हुए भी आपने इन पत्रों को क्यों प्रकाशित किया ? चतुर्वेदी जी ने उत्तर दिया :

"मैं अपना जीवन खुली हुई किताब के रूप में रखने का पक्षपाती हूं - जिसका जी चाहे सो पढ़ लें। मैं अपनी चारित्रिक या किसी भी प्रकार की त्रुटियों को छिपाना नहीं चाहता। उनको छिपाना तो दम्भपूर्ण होगा। नवीन जी के चरित्र के हूबहू चित्रण के लिए उनके पत्रों का प्रकाशन अति आवश्यक था और यदि इसके लिए मुझे कुछ त्याग करना पड़ा तो वह मेरा कर्तव्य ही था।"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि चतुर्वेदी जी एक साहसिक एवं निर्भीक साहित्यकार हैं।

२ - सरलता और निष्कपटता :

चतुर्वेदी जी सरल प्रकृति के व्यक्ति हैं। उन्होंने निष्कपट होकर अपनी भूलों का स्वीकार किया है। मोहनसिंह सेंगर को घासलेटी आन्दोलन के विषय में लिखे गये पत्रों में उन्होंने विनम्रता प्रदर्शित करते हुए लिखा है कि -" मुझ से सैकड़ों[2] भूलें - नहीं भयानक भूलें बन पड़ी हैं, लेकिन मैं उन्हें छिपाऊंगा नहीं।" आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्बन्ध में पहले चतुर्वेदी जी के मनमें कुछ पूर्वग्रह था परन्तु द्विवेदी का पत्र पाकर उनका भ्रम दूर हो गया। इस सम्बन्ध में उन्होंने द्विवेदीजी को लिखा है-

"आपकी बड़ी कठोर[3] मूर्ति मैंने अपने मस्तिष्क में बना रक्खी थी। मेरी यह भूल थी।"

इसी प्रकार आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा के समक्ष अपनी प्रचारवादी प्रवृत्तियों से मुक्त होने की अभिलाषा प्रकट करते हुए वे लिखते हैं:-

---

१ " पं० चतुर्वेदी जी से हुई प्रत्यक्ष भेंट के आधार पर।

२ " प्रेरक साधक" (१९७०), पृ० ५१७।

३ " नागरी प्रचारिणी पत्रिका", सं० २०२१, अंक-१,२, पृ० १६१।

"ख्यातिप्रेम की धूल से भरी हुई "प्रचार कार्य" या "प्रोपैगैण्डा" की सड़क पर लेखों की मोटर दौड़ाते-दौड़ाते हैरान हो गया हूं और साहित्यिक क्षेत्र की रमणीक वनस्थलियों की सैर पैदल ही करना चाहता हूं।"[1]

इन पत्रों में चतुर्वेदी जी का सरल और निष्कपट हृदय सहज ही प्रतिबिम्बित हो उठा है।

३ - शहीदों का श्राद्ध :

शहीदों का श्राद्ध भी चतुर्वेदी जी का प्रिय विषय रहा है। अनेक शहीदों के परिजन उनके द्वारा लाभान्वित हुए हैं। बाबा पृथ्वीसिंह आज़ाद ने उनको "शहीदों के सखा" की उपाधि से सम्मानित किया है।"[2] श्री अटलबिहारी वाजपेयी के नाम अपने ३-१२-१९७० को लिखे पत्र में चतुर्वेदी जी ने सूचित किया है -

"मेरे क्षुद्र जीवन के २२ वर्ष प्रवासी भारतीयों की सेवा में बीते और पिछले २५ वर्ष शहीदों के श्राद्ध में।"[3]

"नवभारत टाइम्स" के तत्कालीन सम्पादक श्री अक्षयकुमार जैन को प्रेषित २-७-१९६८ के पत्र में उन्होंने सूचना दी है कि - "टीकमगढ़ के शहीद नारायणदास खरे के विषय में मेरी जो छोटी-सी चिट्ठी "नवभारत टाइम्स" में छपी थी, वह एक बिस्कुट बनानेवाले व्यापारी के हाथ में आ गयी और उसने पत्र की अपील से प्रभावित होकर शहीद की पत्नी को ४०१ रुपये भेज दिये।"[4] इस प्रकार शहीदों के श्राद्ध के लिए चतुर्वेदीजी सतत चिन्तित और प्रयत्नशील रहे हैं।

४ - विनोद-प्रियता :

चतुर्वेदी जी खुली तबीयत के व्यक्ति हैं। वे डटकर विनोद करते हैं और इसी कारण वे जल्दी ही घुल-मिल जाते हैं। उनके पत्रों में भी यत्र-तत्र उनकी विनोद-वृत्ति स्पष्ट रूप से झलकती है। इस विषय में

---

१ "भारतीय साहित्य", वर्ष-१४, अंक-१,२, पृ० २२३।

२ "प्रेरक साधक" (१९७०), पृ० ४४।

३ "डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७०), पृ० २११।

४ -वही-, पृ० २०७।

पं० रामनारायण उपाध्याय को उन्होंने लिखा है- "हंसी-मजाक करने का मेरा स्वभाव रहा है और वह पत्रों में भी प्रतिबिम्बित हो जाता है ।"[1]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के पास टीकमगढ़ से दिनांक-३-७-१९४७ को उन्होंने एक विनोदपूर्ण गोपनीय म पत्र लिख भेजा था । इसमें एक अच्छा नुसखा सुझाते हुए उन्होंने लिखा था -

"हम लोग अपनी स्प्रिट को तरोताजा बनाये रखें और वयो-वृद्धों की सूची में नाम लिखाने से इन्कार कर दें तो नवयुवक-मण्डली हमारे साथ रहेगी । (इस नुसखें मे घृष्टता + धूर्तता की कुछ-कुछ मात्रा और चाहिए) श्री जैनेन्द्र जी मुझे "अकाल युवा" कहते हैं । प्राइवेट तौर पर मैंने नुसखा आपको बतला दिया है । गोपनीय प्रयत्नत: ।"[2]

चतुर्वेदी जी अपने पर हंसने की कला में बहुत कुशल हैं । डा० वारान्निकोव लेनिनग्राड को एक पत्र में उन्होंने लिखा है- "आगरा विश्व-विद्यालय ने मुझे सर्वथा अयाचित डी० लिट० की आनरेरी-सम्माननीय उपाधि प्रदान की है - ८ दिसम्बर को । मैंने इस पर एक तुकबन्दी की है -

"बड़े बड़ेन की अकल अब चरन लगी है घास ।
फोकट में डी०लिट० बने श्री बनारसीदास ।।"[3]

इसी प्रकार का एक विनोदभरा पत्र उन्होंने श्री कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर" की नवम्बर १९५६ के "नया जीवन" में प्रकाशित टिप्पणी के उत्तर में लिख भेजा था[4] । श्री "प्रभाकर" जी ने उस पत्र को "मजाक का मैनी-फैस्टो" कहा है । इस प्रकार चतुर्वेदी जी का विनोदी स्वभाव उनके पत्रों में पूर्णत: प्रकट हुआ है ।

५- छुट भाइयों को प्रोत्साहन :

"श्रद्धेय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" शीर्षक अपने लेख में बाबू वृन्दावनदास ने कहा है कि "चतुर्वेदी जी इस देश के उन महान व्यक्ति-यों में से एक हैं जो पत्र-व्यवहार द्वारा अपने मित्रों, परिचितों और सामा-जिक कार्यकर्ताओं को सतत प्रेरणा प्रदान करते रहते हैं, तथा क्या करणीय है

---

१ "प्रेरक साधक" (१९७०), पृ० २९-३० ।
२ "शांतिनिकेतन से शिवालिक" (१९६७), संपा० शिवप्रसादसिंह, पृ० ४८४ ।
3 "डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ० २६४ ।
४ "प्रेरक साधक", पृ० ५४-५५ ।

इस दिशा की ओर सदैव इंगित करते रहते हैं।"[1] कहीं अपने पत्रों में श्री-गोविन्दप्रसाद केजड़ीवाल को प्रजांक का परिशिष्टांक निकालने का परामर्श देते हैं[2] तो कहीं माखनलाल सिसोदिया[3] को ब्रज साहित्य-मंडल के लिए क्रियाशील बनने की प्रेरणा देते हैं। ब्रज को वे अपनी पितृभूमि समझते हैं। अतः उनके पत्रों में स्थान-स्थान ब्रज के पुनर्निर्माण-सम्बन्धी महत्वपूर्ण सुझाव दिखाई पड़ते हैं।

(ग) दृष्टिकोण या विचारधारा :

चतुर्वेदी जी के जीवन और साहित्य में "बहुजनहिताय" का सिद्धांत सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। बाबू वृन्दावनदास के नाम लिखे एक पत्र में उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का उद्देश्य इन शब्दों में स्पष्ट किया है :-

"मेरे साहित्यिक जीवन का एक दार्शनिक दृष्टिकोण रहा है। मैंने कभी आत्म-केन्द्रित होने का प्रयत्न नहीं किया। साहित्योपवनों की स्थापना ही मेरा उद्देश्य रहा है।"[4]

इसी प्रकार अयोध्याप्रसाद गोयलीय जी के नाम पत्र में वे लिखते हैं - "सर्वसाधारण को सात्विक-मानसिक भोजन देना एक महान् यज्ञ है जिसका महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता ही जायगा और इस यज्ञ की आंशिक पूर्ति के लिए ही हम लोगों का यह सम्बन्ध हुआ है, ऐसा मैं मानता हूं।"

इससे स्पष्ट है कि चतुर्वेदी जी का दृष्टिकोण पूर्णतः मानवतावादी है।

चतुर्वेदीजी की पत्र-लेखन की पद्धति अपने ढंग की अनूठी है। चाहे वे पोस्टकार्ड लिखें या अन्तर्देशीय पत्र-सबमें नीली स्याही से लिखने के साथ-साथ लाल स्याही से भी कुछ शब्द या वाक्य अवश्य लिखते हैं। इसी प्रकार पत्र पूरा कर चुकने पर वे उसके नीचे अथवा ऊपर या हाशिये में भी कुछ महत्वपूर्ण सूचना लिख देते हैं। अपने पत्रों में अंग्रेजी के शब्दों और वाक्यों का भी वे प्रचुरतः प्रयोग करते हैं। अंतमें हम श्री श्यामसुन्दर खत्री के शब्दों में यही कहेंगे :- "श्री बनारसीदास ने लिखे अनगिनत पत्र। हुआ पत्र-लेखक कहाँ ऐसा है अन्यत्र?"[5]

---

१ "ब्रजभारती", मार्गशीर्ष सं० २०२४ वि० पृ० ६।

२ "डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र", पृ० २१०।

३ -वही, पृ० २३१। ४- वही, पृ० १८८। ५- प्रेरकसाधक, पृ० ४७२

६. लोकशिक्षक, २४ दिसम्बर १९७६, पृ० ४।

६ - सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" (१८९७-१९६२):

सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" यथा नाम तथा गुण:" की उक्ति को चरितार्थ करनेवाले साहित्यकार थे । वे आधुनिक हिन्दी साहित्य में सूर्य के समान तेजस्वी और निराले थे । उनके व्यक्तित्व की प्रखरता एवं असाधारणता केवल उनके साहित्य में ही नहीं, उनके जीवन-व्यवहार और पत्राचार में भी स्पष्टत: झलकती है ।

"निराला" जी का पत्र-साहित्य :

फक्कड़ और मनमौजी होते हुए भी "निराला" जी अपने पत्र-व्यवहार के प्रति असावधान न थे । उनके सावधान संग्रहकर्तावाले रूप की ओर संकेत करते हुए डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है -

"निराला सामग्री-संकलन के प्रति अत्यन्त सजग थे । उनके फक्कड़पन की कहानियों के कारण जैसे उनका गृहस्थ-रूप आंखों से ओझल हो गया है, वैसे ही और इसी कारण उनका सावधान संग्रहकर्तावाला रूप भी लोगों की आंखों से ओझल है । किन्तु निराला ने गढ़कोला में रहते समय साहित्यिक मित्रों से प्राप्त पत्र सावधानी से रखे । इसके अतिरिक्त जहां से बन पड़ा, वे अपने भेजे हुए पत्र भी वहां से उठा लाए ।"[१]

"निराला" जी के पत्र उनके साहित्य का ही एक अंग है । यद्यपि उन्होंने इन पत्रों को साहित्य समझकर नहीं लिखा है, तथापि इनमें उनके कलाकार की सहज वृत्तियां निर्बाध रूप में प्रकट हैं । उनके पत्रों के दो स्वतंत्र संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं :- एक आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री द्वारा सम्पादित "निराला के पत्र" और दूसरा डा० रामविलास शर्मा द्वारा सम्पादित "निराला के ~~पत्र~~"-~~और दूसरा~~ की साहित्य-साधना भाग-३" । दोनों ही पत्र-संग्रहों के सम्पादक "निराला" जी के निकट के सहयोगी और विशेष कृपापात्र रहे हैं ।

शास्त्री जी ने इस विश्वास से कि" एक-न-एक दिन निराला के ये पत्र अन्ध-अन्तर्भूमि से निकलकर प्रकाशके आकाश में छवि,मधु,सुरभि भरेंगे," ~~संजो~~ संजोये रखा था । "निराला के पत्र" शीर्षक संग्रह की दो महत्वपूर्ण

---

१ "निराला की साहित्य-साधना" (१९७६), भूमिका, पृ० ६४ ।

विशेषताएं हैं :- एक लम्बी भूमिका और दूसरी विस्तृत पाद-टिप्पणियां डा० पद्मसिंह शर्मा "कमलेश" प्रस्तुत संग्रह की भूमिका को हिन्दी आलोचना साहित्य की अक्षय निधि मानते हैं।[1] पादटिप्पणियों के सम्बन्ध में उनका मत है कि "निराला ने जहां कहीं अपने पत्रों में काव्य-सृजन की प्रक्रिया अथवा रचना-विशेष के सम्बन्ध में कुछ लिखा है वहां पादटिप्पणी के रूप में सम्पादक ने अपनी रचनाओं और जीवन-संघर्षों की सूचक घटनाओं का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार यह पत्र-संकलन एक साथ दो साहित्यकारों के प्रेरक तत्वों से परिपूर्ण हैं।[2] प्रस्तुत संग्रह में १०६ पत्रों का संकलन है जो सन् १६३५ से १६५७ के बीच की अवधि में लिखे गये हैं। यह अवधि छायावादी काव्यधारा की क्षीणता और स्वयं छायावादी कवियों द्वारा नयी प्रगतिवादी धारा अपनाये जाने की अवधि है। "निराला" जी के जीवन-चरित का अध्ययन करनेवाले के लिए ये पत्र असाधारण महत्व रखते हैं।

"निराला की साहित्य-साधना-३" में निराला जी के लिखे हुए पत्रों के साथ पृष्ठभूमि के रूप में उनको लिखे हुए पत्र भी संकलित हैं। सम्पादक डा० रामविलास शर्मा ने बहुत उपयुक्त लिखा है कि "पत्र चाहे निराला के लिखे हों, चाहे दूसरों के, सभी का सम्बन्ध एक ही मुख्य पात्र, निराला से है।"[3] इस प्रकार यहां पत्र-साहित्य के दोनों पक्षों का उद्घाटन होने से रसास्वाद की प्रक्रिया अधिक सरल बन गयी है। इस पत्र-संग्रह के तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में "निराला" जी के नाम लिखे हुए पत्र, द्वितीय खण्ड में "निराला" जी के लिखे हुए पत्र और तृतीय खण्ड में "निराला" जी के जीवन से सम्बन्धित कागज-पत्र संकलित हैं। इस संग्रह की अन्य उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इससे "निराला" जी के समकालीनों के अतिरिक्त पूर्व-यूगीन पंडितों (आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, नाथूराम शंकर शर्मा आदि) तथा उत्तरकालीन साहित्यकारों (केदारनाथ अग्रवाल, अमृतलाल नागर आदि) के साथ हुआ निराला जी का पत्र-व्यवहार भी प्रकाशित हैं। अतः "निराला" जी के जीवन-वृत्त एवं व्यक्तित्व के अध्ययन के साथ उनके युग-परिवेश की जानकारी के लिए भी इसका महत्व निर्विवाद है। हिन्दी-पत्र-साहित्य में

---

१ "हिन्दी साहित्याब्द कोश", १६७१, पृ० २८२ । २.- वही ।
३ "निराला की साहित्य-साधना-३" (१६७६), भूमिका, पृ० २ ।

यह अपने ढंग का अकेला पत्र-संग्रह है ।

पत्रों में प्रतिबिम्बित "निराला" जी का व्यक्तित्व :

"निराला" जी का व्यक्तित्व एक ओजस्वी पुरुष का व्यक्तित्व था । वे गुणों के विरोधाभास थे, अत: उनके अति निकट रहने वाले लोग भी उनके व्यवहार के सम्बन्ध में अनिश्चित रहते थे । हिन्दी-साहित्य में "निराला" जी के वास्तविक व्यक्तित्व को परखने का बहुत कम प्रयास किया गया है । इस सम्बन्ध में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का यह मत उल्लेखनीय है कि - "हिन्दीभाषी जनता के साहित्यिक ज्योतिषियों ने, कहानीवाले सात अन्धे भाइयों की भांति, भांति-भांति से हाथी की हास्य-विस्मय-भरी रूपरेखाएं बखान कीं, जिनसे "निराला" जी की अपेक्षा समीक्षकों की निराली सामुद्रिक बुद्धि का ही परिचय मिला ।"[1] "निराला" जी के बहुमुखी व्यक्तित्व का अध्ययन उनके पत्रों के आलोक में करने की आवश्यकता है । यहां इस दिशा में लघु प्रयास किया गया है ।

(क) व्यक्तित्व की स्थूल रेखाएं और जीवनी-सूत्र :

निराला जी के पत्रों में उनके व्यक्तित्व का शारीरिक पक्ष भी एकाध स्थल पर उद्घाटित हुआ है । हिन्दी के पत्र-लेखकों में सम्भवत: "निराला" जी ही एक ऐसे लेखक हैं जिन्होंने पत्र में अपने शारीरिक गठन की झांकी प्रस्तुत की है ।

१ - जाति, बाह्य आकृति और पारिवारिक स्थिति :

"निराला" जी ने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम प्रेषित ११-१-१६२१ के पत्र में अपनी जाति, बाह्य आकृति और पारिवारिक स्थिति का संक्षेप में किन्तु बड़े संयत और सुन्दर ढंग से रेखांकन किया है । उन्होंने लिखा है :-

"मैं कान्यकुब्ज ब्राह्मण हूं । आपका पड़ोसी हूं । उन्नाव ज़िला में पूर्वा (पुरवा) के पास का रहनेवाला हूं । उम्र २२ शरीर पांच फुट ११ 1/2 इंच लम्बा, छाती ३६ इंच चौड़ी । हृष्ट पुष्टांग न तु स्थूलकाय ।

---

१ "हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी" (१६७०), पृ० १७१ ।

अक्षर हूं, न साकार और न निराकार । सगा यानी माता, पिता, भाई, बहन, चाचा, चाची, स्त्री संसार कोई नहीं (नहीं) । सब थे किन्तु १९१८ के इन्फ्लुएन्जा मैं (में) सब गुजर गए । - - - - - -

मेरा (मेरे) पिता-पितृव्य इस स्टेट के फौजी अफसर थे । गण्यमान्य थे। मेरा जन्म यहीं हुआ । शिक्षा यहीं मिली । ----"[1]

इससे स्पष्ट है कि निराला जी ने इस पत्र में अपना जीवन-वृत्त और व्यक्तित्व बड़े सुरेख एवं सुन्दर शब्दों में अंकित कर दिया है । इसमें जहां उनके परिवार की करुणाजनक स्थिति का अंकन है, वहां उनके आभिजात्य और देहात्मबोध का चित्रण भी है । आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे युग-प्रवर्तक साहित्यकार को पत्र लिख रहे हैं, फिर भी इसमें "निराला" जी का आत्मचैतन्य पूर्णत: प्रकट होता है। यही उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है । डा० सूर्यप्रसाद दीक्षित ने भी इसी विशेषता की ओर इंगित करते हुए लिखा है :-

"निराला" का व्यक्तित्व असाधारण बहमन्यता से परिपूरित है । उनके इस आत्मचैतन्य का कारण है - उनका आभिजात्य और देहात्मबोध ।"[2]

२ - गृहस्थ जीवन : कौटुम्बिक दायित्व :

"निराला" जी ने अपने सृजन-काल में साहित्यिक पत्रों के अतिरिक्त कुछ पारिवारिक पत्र भी लिखे हैं । इन पत्रों में बड़ा घरेलूपन है, साथ ही कौटुम्बिक दायित्व भी । जैसे, २७ फरवरी १९२८ को अपने साले रामधनी को सूचित करते हैं :- "हमारी गाई बियानी है । दूध का अभाव अब नहीं रहा । और सब कुशल है ।"[3]

इसी प्रकार अपने पुत्र रामकृष्ण त्रिपाठी को खर्च के रुपये भेजते हुए उन्होंने एक पत्र में लिखा है-" तुम्हारे दोनों पत्र मिले । समाचार मालूम

---

१ "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" (१९७६), पृ० २१६

२ "अलक्षित निराला" (१९७३), पृ० ६० ।

३ "निराला की साहित्य-साधना- ३", पृ० २४४ ।

मालूम हुए । कल ३०) तीस रुपये तुम्हारे खर्च के लिए भेजे, आज १५) - पन्द्रह रुपये और भेजते हैं । दर्शन कर लीं, अच्छा है । - - -"[1]

ये पत्र "निराला" जी के कौटुम्बिक दायित्व बोध के साक्षी हैं । इन पत्रों की ओर संकेत करते हुए डा० रामविलास शर्मा ने बहुत उपयुक्त लिखा है कि -" जो लोग इस अफवाह के शिकार हैं या खुद उसे फैलाने के जिम्मेदार हैं कि निराला तो मस्त, फक्कड़जीव थे, जिन्हें घर-गृहस्थी की चिन्ता न थी, निराला के गृहस्थ जीवन, उनके दायित्व बोध, कर्तव्यनिष्ठा का चित्र यहाँ देखें । काफी पत्र रामकृष्ण त्रिपाठी के नाम हैं । जीवन के जिस दौर में निराला बहुत विक्षिप्त जान पड़ते थे, उस दौर में भी वे रामकृष्ण की पढ़ाई-लिखाई से लेकर उनकी गृहस्थी जमाने तक की ओर सतर्क थे ।"[2]

३ - अस्वस्थता और आर्थिक चिन्ता :

सन् १९२६ से १९२८ ई० तक का समय "निराला" जी की घोर अस्वस्थता और आर्थिक चिन्ता का समय था । इन वर्षों में प्रसाद जी, शांतिप्रिय द्विवेदी, विनोदशंकर व्यास, आचार्य शिवपूजन सहाय आदि को लिखे गये पत्रों में इसकी बराबर चर्चा मिलती है । इस दुःसह्य परिस्थिति में उक्त साहित्यिक मित्रों ने "निराला" जी की ओर पर्याप्त सहानुभूति प्रकट की थी । दिनांक १०-७-१९२७ को उन्होंने विनोदशंकर व्यास को लिखा था :-

"यहाँ रोगग्रस्त जीवन दुःसह हो रहा है । आप लोगों के पत्रों से ही बचा हूँ ।"[3]

पिछले अध्याय में प्रसाद जी के पत्र-साहित्य की चर्चा में हम देख चुके हैं कि "निराला" जी जब अकेले पड़ गये थे, तब प्रसादजी ने औषधि-उपचार से उनकी पर्याप्त सहायता की थी । "निराला" जी ने अपनी घोर निराशा के क्षणों में प्रसाद जी को लिखा था -

"- - - शरीर बिलकुल क्षीण हो गया है । जीवन रहा तो दूसरा पत्र लिखूंगा । यह निराला का अंतिम प्रमाणपत्र है । सब अपराध, सब त्रुटियों के लिए क्षमा ।"[4]

---

१ " निराला की साहित्य-साधना" (१९७६), पृ० ३३२ ।

२ -वही-, भूमिका, पृ० ६ । ३ -वही-, पृ० २२४ । ४ -वही-, पृ० २४० ।

सन् १९३६ से निराला जी की मानसिक स्फूर्ति उत्तरोत्तर घटने लगी थी । ११-३-१९३६ के पत्र में उन्होंने जानकीवल्लभ शास्त्री को सूचित किया था - "मैं मानसिक स्फूर्ति उत्तरोत्तर खोता जा रहा हूं । केवल विश्वास रह गया है ।"[1] सन् १९४३ ई० के आसपास उनकी मानसिक स्थिति बहुत बिगड़ गयी थी । डा० रामविलास शर्मा के नाम लिखे २-२-१९४३ के पत्र में उन्होंने लिखा है- "अपने-आप दिनरात जलन होती है । - - - - कभी रात-रात भर नींद[2] नहीं आती । - - - तम्बाकू छूटती नहीं खोपड़ी भन्नाई रहती है ।"

इन पत्रों में एक सर्वहारा लेखक की विद्रोह-वेदना का मर्मस्पर्शी स्वर मुखरित है ।

जैसा कि डा० रामविलास शर्मा ने संकेत किया है, रोग और आर्थिक कष्टों से "निराला"[3] जी की लड़ाई अधिकतर गढ़कोला के उसी कच्चे मकान में हुई है । गढ़कोला से ही दि० ६-१२-१९२७ को उन्होंने प्रसादजी के नाम एक पत्र में लिखा था :

"आप मुझे लिफाफे में पत्र लिखने पर अपना एक सादा लैटर पैपर(Letter Paper)साथ ही रख दिया कीजिएगा । यहां कागज का बड़ा अभाव है ।"[4]

यह पत्र महाकवि की आर्थिक स्थिति का अतर्क्य प्रमाण है ।

४- "पल्लव" की आलोचना :

"पल्लव" कविवर सुमित्रानन्दन पन्त का कविता-संग्रह है जो सन् १९२६ में प्रकाशित हुआ था । पन्त जी निराला जी के घनिष्ठ[5] मित्र थे । निरालाजी के स्नेहभरे पत्रों से उन्हें अपूर्व आनन्द मिलता था । निरालाजी ने पन्त जी की कविताओं में कुछ अशुद्धियां बताई थीं । पन्त जी ने "पल्लव" में

---

१ "निराला के पत्र" (१९७१), पृ० ८४ ।

२ "निराला की साहित्य-साधना-३" (१९७६), पृ० ३१२ ।

३ "निराला" (१९७१), पृ० ८ ।

४ "निराला की साहित्य साधना -३", पृ० २३२ । ५ -वही-, पृ० ७४ ।

"...आप वैसे ही स्नेहपूर्ण, कृपापूर्ण पत्र मुझे लिखा कीजिए, मुझे उनकी बड़ी जरूरत है, मैं सदैव आपका कृतज्ञ रहूंगा ।"

उन अशुद्धियों को ठीक कर लिया, पर "पल्लव" के प्रवेश में इसका जिक्र न किया । मुक्तछन्द की आलोचना लिखने से पहले निराला जी से सलाह-मशविरा कुछ न किया ।[1] अत: निराला जी के मित्र श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने जब उन्हें पत्र द्वारा सूचित किया कि-"पल्लव" की भूमिका में पन्त ने आपकी शैली पर जो आलोचना की है- विचारणीय है"[2], तो निरालाजी को दु:ख हुआ । तत्पश्चात् शांतिप्रिय जी अपने पत्रों द्वारा "निराला" जी को "पल्लव" की आलोचना के लिए बराबर उकसाते रहे । अत: निरालाजी ने आषाढ़ सन् १९२७ ई० में प्रकाशित "माधुरी" में "पल्लव" की कठोर आलोचना की ।

"पल्लव" की कठोर आलोचना से अनेक मित्रों तथा छायावाद के समर्थकों को दु:ख हुआ । श्री शिवपूजन सहाय ने "निराला" जी को पत्र द्वारा मित्रवत् सलाह देते हुए लिखा, "माधुरी देखी । समालोचना में कुछ कटुता आ गई है । मैत्री का पुट देकर दोष दर्शन कराते तो रंग जम जाता।[3] श्री रामनाथ सुमन ने अपना दु:ख प्रकट करते हुए कहा-" मुझे तुम्हारी पंत की आलोचनाओं से बड़ा दु:ख पहुंचा है ।"[4] स्वयं पन्त जी को इससे बड़ा आघात लगा, परन्तु उन्होंने सहन शीलता से यह प्रहार झेलकर स्नेह-सम्बन्ध बनाये रखने का आह्वान करते हुए निराला जी को लिखा -

"आपकी "पन्त जी और पल्लव "शीर्षक आलोचना माधुरी में पढ़ने को मिली । - - - अच्छा ही हुआ, बहुत दिनों से आप हजरत नाराज़ थे, अब शायद जी की जलन निकल जाने पर आप कुछ शान्त हो जाए (जायँ) गे ।" "जलन" मैंने कुछ आपको चिढ़ाने के लिए भी लिख दिया । - - - वाह भई ! अच्छा, अब अगर गुस्सा मिट गया हो, पन्त को उसके १ से १०० तक और शायद इससे भी अधिक अपराधों का दण्ड बहुत कुछ आप दे चुके हों तो एक बार प्रयाग आकर दर्शन दीजिए- आपसे किसी प्रकार लड़ाई झगड़ा तो मुझे करना नहीं है, केवल मनोविनोद रहेगा ।--[5]

हिन्दी पत्र-साहित्य में इस पत्रका ऐतिहासिक महत्त्व है ।

१" निराला की साहित्य-साधना भाग-१"(१९६९), डा०रामविलासशर्मा पृ० १४० ।

२" निराला की साहित्य-साधना-३", पृ० ७५ । ३ -वही-, १०४ ।

४- -वही-, पृ० १४५ । ५ -वही-, पृ० १०२-१०३ ।

पंत जी ने "पल्लव" की कठोर आलोचना का कोई उत्तर नहीं दिया और ३ जनवरी, १६३१ को अलमोड़े से "निराला" जी को व्रजभाषामें-

"छमहु बन्धु, अपराध ।

रूसन की कछु बान तुम्हें, पै "

से शुरू होनेवाला पद्यमय पत्र लिखा जिसका उत्तर निराला ने लखनऊसे ६जनवरी १६३१ को बंगला में दिया था । इस पत्र की प्रारम्भिक पंक्तियां इस प्रकार हैं:-

" बन्धु हे -

भालो बासी, भालो बासियाछो ,

नूतन किछुइ करो नाइ ;

आमि मने-मने जपियाछि ,

तारे तुमि आसियाछो ताइ ।"[1]

"पल्लव" की आलोचना के सम्बन्ध में श्री विश्वम्भर "मानव" ने लिखा है कि -" मेरा अनुमान है कि भीतर का सम्बन्ध इसी घटना के उपरांत सदैव को समाप्त हो गया था ।"[2] परन्तु "निराला" जी के पत्र-साहित्य में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता । इसके विपरीत "निराला" जी ने प्रसाद जी के नाम २४-४-१६३३ को लिखे पत्र में यह सूचित किया है कि वे पन्त जी के साथ "ऊषा अनिरूद्ध" वाला ड्रामा खेलना चाहते हैं जिसमें पन्त जी ऊषा का पार्ट खेलेंगे और वे अनिरुद्ध बनेंगे ।[3]

इससे स्पष्ट है कि "पल्लव" की आलोचना केवल "निराला" जी के जीवन की ही नहीं, समस्त हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण घटना है और पत्रों के द्वारा ही इस घटना का सही अध्ययन किया जा सकता है ।

(ख) चारित्रिक विशेषतायें :

महाकवि "निराला" एक लोकोत्तर पुरुष थे । लोकोत्तर व्यक्तियों के चरित्र को जानना नितांत कठिन है, तथापि पत्रों से इन विभूतियों के चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है ।

---

१ "निराला के पत्र" (१६७१), पृ० ६५ ।

२ "काव्य का देवता : निराला" (१६७४), पृ० २३ ।

३ "प्रसाद के नाम पत्र" (१६७६), पृ० १६४ ।

१ - स्पष्टवादिता और निर्भीकता :

"निराला" जी स्पष्टवादी और निर्भीक व्यक्ति थे । वे आत्म-विश्वासी और आत्म-निर्भर थे । सच्ची बात कहने में वे किसी से नहीं डरते थे । उन्होंने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को भी लिख दिया था -"आपकी लिखावट से मालूम हो रहा है कि मेरे पूर्व्व प्रेरित पत्र की व्याख्या विज्ञ-दृष्टि से नहीं (नहीं) की गई ।"[1]

डा० रामविलास शर्मा के अनुसार "सूर्यकान्त पहले हिन्दी-लेखक थे जो महावीरप्रसाद द्विवेदी से कह रहे थे कि मेरे पूर्व प्रेरित पत्र की व्याख्या विज्ञ-दृष्टि से नहीं की गई ।"[2]

"निराला" जी की इसी स्पष्टवादी प्रवृत्ति के कारण उनका काफी विरोध हुआ, परंतु हर तरह के विरोध सहते हुए भी वे अपने ओजस्वी व्यक्तित्व के कारण आगे बढ़ते रहे ।

२ - स्वाभिमान :

श्री राजेन्द्रसिंह गौड़ के शब्दों में निराला के मिजाज़ में बादशाहत थी और बादशाहत के साथ जिन्दादिली ।[3] छतपुर से लौटकर श्री शिवपूजन सहाय के नाम पत्र में उन्होंने लिखा था -

"- - - - गोली मार दीजिए- हम लोग भी साहित्य के बादशाह हैं- अन्धे क्या जाने -"[4]

वाचस्पति पाठक को लिखे पत्र में महात्मा गांधी से हुई अपनी बातचीत का सन्दर्भ याद दिलाते हुए उन्होंने लिखा है-"बनिया-कुल-मुकुट-मणि महात्मा गांधी ने जब मुझसे कहा था -"मैं तो उथला आदमी हूं, आपको याद होगा, मैंने जवाब दिया था, हम लोग उथले को गहरा और गहरे को उथला कर सकते हैं ।"[5]

इस प्रकार "निराला" जी किसी के सामने झुकना नहीं जानते थे । डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव ने उनकी स्वाभाविमानी प्रवृत्ति के सम्बन्ध में बहुत उपयुक्त लिखा है-" एक उग्र स्वाभिमान का स्वर था, तीव्र [illegible]-

---

१ "निराला की साहित्य-साधना भाग-३ , पृ. २१५-१६ ।

२ -वही-, भाग-१, पृ० ४३ ।

३ " महाप्राण निराला की प्रतिभा और व्यक्तित्व" (लेख) "सम्मेलनपत्रिका" भाग-४८, सं० २,३,४, पृ० ३८५ ।

४ "निराला की साहित्य-साधना-३, पृ० २३६ । ५ वह-, पृ० २६१ ।

आत्मविश्वास का सन्देश था, "विप्लव के बादल" की भांति निरंतर सिर ऊंचा करके चलनेवाले ने कभी प्रभंजन के सामने सिर भुकाना सीखा ही नहीं।[1] डा० भगीरथ मिश्र के अनुसार अपनी उग्र स्वच्छन्दता और फक्कड़पन में निराला कबीर से तुलनीय है।[2]

३ - संगीत-प्रेम :

"निराला" जी को गाने-बजाने का शौक् था। मित्र-मण्डली के सामने वे गाकर अपनी कविताएं सुनाते थे। श्री विनोदशंकर व्यास को अपने संगीत-प्रेम के विषय में उन्होंने लिखा है :- "निठल्ले दिन काटने से, मेरे विचार में गाना-बजाना बहुत अच्छा है। हां, इतना न गाया जाय कि फिर गला ही बैठ जाय।"[3] उनके मुक्त-छन्द में भी मधुर संगीत भरा है।

४ - गम्भीरता और तन्मयता :

"निराला" जी क एक धीर-गम्भीर साधक थे। साहित्य की साधना उन्होंने बड़ी तन्मयता से की है। अपनी रस-समाधि का परिचय देते हुए उन्होंने बाबू गुलाबराय के नाम पत्र में लिखा है-" मैं जब रस-ग्रहण करता हूं उस समय गुंजार नहीं करता।"[4] इस प्रकार वे रसलीन साधक थे।

(ग) दृष्टिकोण अथवा विचारधारा :

"निराला" जी अक्खड़ और फक्कड़ होते हुए शास्त्रीय सिद्धांतों के विरोधी नहीं थे। जानकीवल्लभ शास्त्री को लिखे पत्रों में उनकी विचार-धारा का स्पष्ट परिचय मिलता है। संस्कृत के सिद्धांत की चर्चा करते हुए उन्होंने ११-२-१९३९ को शास्त्री जी को लिखा था -" - - - मैं आपको जिस संस्कृत रूप में देखना चाहता हूं, वह अशास्त्रीय नहीं। अशास्त्रीयता से ही मुझे घृणा रही है।"[5]

---

१ "युगकवि निराला" (१९७०), संपा० गिरिराज शरण अग्रवाल, पृ० ९।

२ "स्वाभिमानी और ओजस्वी कवि निराला" (लेख), "सम्मेलन पत्रिका", भाग- ४८, पृ० ३३१।

३ "निराला की साहित्य-साधना-३" (१९७६), पृ० २४७।

४ -वही-, पृ० २४५। ५ "निराला के पत्र" (१९७१), पृ० ९०।

निराला जी एक स्वतंत्र विचारशील साहित्यकार थे । रवीन्द्रनाथ टैगोर म और महाकवि कालिदास के ग्राहक होते हुए भी वे हिन्दी के अनन्य आराधक थे । श्री जानकीवल्लभ शास्त्री के नाम अपने ३०-८-१९३८ के पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिखा है-

"मैं तो कालिदास और रवीन्द्रनाथ से अपनी मां का मुख ही अधिक पहचानता हूं ।"[1]

"निराला" जी के इसे भीष्म तर्क के आगे शास्त्री जी ने अस्त्र डाल दिये थे । इस प्रकार "निराला" जी का अपना निजी चिन्तन, मनन और दर्शन था ।

"निराला" जी के पत्रों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वे उच्चकोटि के काव्यकार होने के साथ ही एक समर्थ गद्यकार थे । सन् १९२१ ई० में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को लिखे हुए पत्रों में उनके समर्थ गद्यकार का रूप स्पष्टत: प्रकट होता है । सन् १९२१ से ही उन्होंने गद्य पर असाधारण प्रभुत्व पा लिया था । दो-एक पत्र उन्होंने द्विवेदी जी को अवधी में भी लिखे हैं ।[2] पन्त जी के नाम उन्होंने बंगला में जो पद्यमय पत्र लिख भेजा है, वह उनके बंगला-भाषा पर प्रभुत्व का परिचायक है । वे संस्कृत के भी ज्ञाता थे । श्री जानकीवल्लभ शास्त्री के नाम उन्होंने संस्कृत में भी एक पत्र लिख भेजा था जिसका प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है :

"प्रिय आचार्य्य जानकीवल्लभ ।

प्राप्तं प्रियपत्रं तव । समधिगताश्च सन्देशा: । प्रयागादद्यैवागतोऽहं प्राप्त पत्र: । सत्यं यल्लिखितं त्वया, परन्तु गतेऽपि प्रतिकूलतां कार्य्ये कारणे वा कस्मिंश्चित्, न विरोधोऽधुना कथ्यते ।"[3]

"निराला" जी का प्राय: प्रत्येक पत्र कुशल संरचना का नमूना है । उन्होंने अपने पत्रों में प्राचीन और आधुनिक दोनों पत्र-शैलियों का प्रयोग किया है । जैसे, नारायणदीन अवस्थी को २५-७-१९३० के पत्र में वे लिखते हैं- "प्रिय नारायण दीन को सूर्यकान्त त्रिपाठी का नमस्कार । आगे हाल यह है कि हम उन्नाव में सभापति त्रिपाठी से मिलकर लखनऊ आए और आते ही बीमार पड़गए ।"[4] इस प्रकार "निराला" जी के पत्र

---

१ "निराला के पत्र" (१९७१), पृ० १५४ ।
२ "निराला की साहित्य-साधना भाग-३ (१९७६), पृ० ११९-२० ।
३ "निराला के पत्र", पृ० ११३ ।
४ "निराला की साहित्य-साधना-३", पृ० २६० ।

हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य निधि हैं । उनके निराले व्यक्तित्व का वास्तविक परिचय हमें उनके पत्रों में ही प्राप्त होता है ।

७ - सुमित्रानन्दन पन्त (१९००-१९७७) :

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख आलोक-स्तम्भ थे । कलाकार की दृष्टि से उनका स्थान हिन्दी में सर्वोच्च है । उनका कोमल, भावुक, मधुर, मोहक और चिन्तनशील व्यक्तित्व उनके पत्रों में पूर्णतया प्रतिबिम्बित हुआ है ।

पन्त जी का पत्र-साहित्य :

छायावादी कवियों में प्रसाद जी थे जो कम से कम पत्र लिखते थे । पन्त जी में भी एक खास तरह का आभिजात्य अवश्य था, परन्तु अपने निकट के मित्रों को वे मुक्त मन से पत्र लिखते थे । "बच्चन" जी के नाम लिखे उनके पत्र इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं । "बच्चन के नाम पंत के सौ पत्र" तथा "बच्चन के नाम पंत के दो सौ पत्र" - ये दोनों पत्र-संग्रह, हिन्दी पत्र-साहित्य में अपना पृथक स्थान रखते हैं । इन पत्रों में पन्त जी का त्रिविध-व्यक्तित्व, निजी व्यक्तित्व, कवि-व्यक्तित्व और भावक-व्यक्तित्व-साकार हो उठा है । प्रथम संग्रह के पत्र सन् १९६० से १९६२ के बीच की अवधि में लिखे गये हैं । ये पत्र प्रकाशन के उद्देश्य से नहीं लिखे गये हैं, तथापि हिन्दी के दो वरिष्ठ कवियों की पारस्परिक घनिष्ठता, दीर्घ मैत्री और निर्मल सौहार्द के प्रतीक-रूप में इनका प्रकाशन, निश्चय ही एक सार्थक साहित्यिक दस्तावेज़ का प्रकाशन समझा जाना चाहिए । प्रस्तुत पत्र-संग्रह की समीक्षा करते हुए डा० रामस्वरूप आर्य ने उचित ही कहा है कि "पंत के सौ पत्र" पढ़ते हुए पन्त जी के जीवन के कुछ ऐसे सूत्र प्राप्त होते हैं जिनका मिलना अन्य साधनों से कठिन था ।"[१] यही तथ्य पंत के दो सौ पत्र" पर भी चरितार्थ होता है । ये पत्र पन्त जी के कलात्मक गद्य, उनके चिन्तन-मनन के गाम्भीर्य के उत्तम नमूने हैं । इन पत्रों का लेखनकाल १९६२-१९६७ ई० है ।

इन दो पत्र-संग्रहों के अतिरिक्त "बच्चन" जी के नाम लिखे पन्त जी के १२४ पत्र "कवियों में सौम्य संत" शीर्षक पुस्तक में संकलित हैं । ये पत्र, मैत्री के प्रारम्भिक वर्षों में लिखे गये हैं । ये बिलकुल निजी पत्र होते हुए भी

१ "समीक्षा", जनवरी १९७१, पृ० ६६ ।

पंत जी के सृजन, जीवन और व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं । "निराला की साहित्य-साधना भाग-३"-में निराला के नाम लिखे पन्तजी के १२ पत्र संकलित हैं । इन पत्रों का ऐतिहासिक ही नहीं, अपना स्वतंत्र साहित्यिक मूल्य है । "निराला" जी के प्रति पन्त जी का निश्छल मैत्रीभाव इन पत्रों में स्पष्टत: झलकता है । "प्रसाद के नाम पत्र" में संकलित पन्तजी के चार पत्र, प्रसाद जी के प्रति उनके आदरभाव के परिचायक हैं । डा० शांति जोशी लिखित "सुमित्रानन्दन पन्त : जीवन और साहित्य खण्ड-२" में भी पन्त जी के कुछ महत्वपूर्ण पत्र प्रसंगोपात उद्धृत किये गये हैं । इन पत्रों से भी उनके जीवन तथा साहित्य को समझने में पर्याप्त सहायता मिलती है । इस प्रकार पन्त जी का पत्र-साहित्य पूर्व चर्चित-लेखकों की तुलना में सीमित होते हुए भी उनके सृजन, जीवन और व्यक्तित्व के विविध पहलुओं को यथेष्टरूप से प्रकाशित करता है ।

पत्रों में प्रतिबिम्बित पन्त जी का व्यक्तित्व :

"पंत के दो सौ पत्र" की भूमिका में बच्चन जी ने कहा है कि- "किसी भी बड़े व्यक्तित्व के बहुत-से पहलू होते हैं -"शमा हर रंग में जलती है सहर होने तक"[1]। पंत जी के व्यक्तित्व के बहुत-से-पहलू उनके पत्रों के माध्यम से उद्घाटित होते हैं । सर्व प्रथम पत्रों के द्वारा उनके निजी और साहित्यिक जीवन के कुछ पक्षों पर हम प्रकाश डालेंगे ।

(क) जीवनी-सूत्र :

पंत जी के पत्रों में उनकी जीवनी से सम्बन्धित तथ्यों का सिलसिलेवार ब्यौरा नहीं मिलता । हां, उनके साहित्यिक विकास क्रम के सूत्र अवश्य प्राप्त होते हैं ।

१ - अस्वस्थता और अस्थिरता :

सन् १९२१ से १९३० ई० तक पन्त जी के जीवन में अव्यवस्था-सी बनी रही । सन् १९२८ ई० में पिताकी मृत्यु हो जाने से उनका हृदय शोक-संतप्त हो गया[2] । इसके बाद उनका चित्त बड़ा उद्विग्न रहने लगा ।

---

१ "पंत के दो सौ पत्र" (१९७१), "पाठकों से" ।

२ (निराला जी को, दिसम्बर १९२८) "निरालाकी साहित्य-साधना-३, पृ० १५६ ।
"कल प्रात: ८ बजे हमारे पूज्य प्रिय पितृ-चरण हमें सदैव के लिए छोड़कर परमधाम चले गए हैं।----हम सबलोग शोक-संतप्त हैं ।

१६-१२-१६२८ को उन्होंने "निराला" जी के नाम प्रेषित पत्र में लिखा था- "- - - - मेरा चित्त अच्छी तरह स्वस्थ हो जाय तो आप मुझे बनारस बुलाइएगा, - जब आप ठीक समझें, तथा आपको सुभीता हो। - - -[1] इसी प्रकार २८-१-१६२६ को लिखे पत्र में भी उनकी मानसिक अस्वस्थता की चर्चा है-" - - - मेरी मानसिक ऊहापोह अभी किसी ठीक स्थान पर पहुंच जाय, पर अभी तक ऐसा नहीं हो पाया, यद्यपि मैं सदैव ही आशान्वित रहता हूं।"[2]

इस प्रकार अस्वस्थता ने पन्त जी को जीवन की कठोर भूमि पर ला बैठाया। परंतु सन् १६३१ के बाद उनके जीवन-क्षितिज पर सौभाग्य का प्रकाश फैलने लगा। वे सन् १६३१ से १६४० तक कुंवर सुरेश सिंह के पास कालाकांकर में रहे।

२ - "लोकायतन" पीठ की योजना :

सन् १६४२ में पन्त जी ने "लोकायतन" के नाम से एक व्यापक सांस्कृतिक पीठ की योजना बनाई जिसमें रंगमंच को संस्कृति प्रेरणा का माध्यम बनाने का विचार प्रस्तुत किया गया था। परन्तु यह योजना मूर्तरूप ग्रहण न कर सकी। सन् १६४७ में उन्होंने फिर से इस योजना को साकार करने का प्रयास किया। ५ दिसम्बर १६४७ को उन्होंने बच्चन जी को पत्र द्वारा सूचित किया था कि लोकायतन का रजिस्ट्रेशन हो गया है।[3] इसके साथ इस पीठ के विकास के लिए उन्होंने अपने अप्रैल १६४८ के पत्र में बच्चन जी को अनेक सूचनाएं भी लिख भेजी हैं। परंतु अनेक कारणों से यह योजना आगे चलकर स्थगित हो गयी।

३ - पुरस्कार-सम्मान :

पन्तजी को उनकी काव्य-कृति "कला और बूढ़ा चांद" पर सन् १६६१ में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ[4] और उनको "पद्मभूषण" से विभूषित किया गया। पर सन् १६६७ में अंग्रेजी विरोधी हिन्दी-

---

१ "निराला की साहित्य-साधना" (१६७६), पृ० १५८-५६।

२ "वही-, पृ० १६४।

३ "कवियों में सौम्य सन्त" (१६६०), पृ० ५६।

४ "पन्त के सौ पत्र" (१६७०), पृ० ७३।

- आन्दोलन में उन्होंने "पद्मभूषण" की उपाधि छोड़ दी[1] । सन् १९६९ में उनको "चिदम्बरा" शीर्षक कृति पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया था । इस प्रकार पन्त जी हिन्दी साहित्य के जाज्वल्यमान कीर्ति-स्तम्भ थे ।

४ - बच्चन जी पर मुकदमा :

पंत जी द्वारा बच्चन जी पर अदालत में मुकदमा दायर करने की घटना न केवल पन्त जी के जीवन की, वरन् हिन्दी पत्र-साहित्य के इतिहास की एक दु:खद घटना है । पन्त जी से बच्चन जी का परिचय - सन् १९२२ में हुआ था । दोनों में पर्याप्त घनिष्ठता रही है । पन्त जी प्रयाग में प्राय: बच्चन जी के यहां ही ठहरते थे । बच्चन जी ने जब उन पर "कवियों में सौम्य संत" शीर्षक पुस्तक प्रकाशित की, तब पन्त जी अपने एक पत्र में लिखा था -" तुम मेरीवाली पुस्तक का नाम"कवियों में सौम्य-संत " रख रहे हो ठीक ही है, जब मैं तुम पर लिखूंगा तब "संतो में सुमधुर कवि" रखूंगा ।[2] वे बच्चन जी के स्थायी गेस्ट बनकर रहना चाहते थे । परन्तु सन् १९६६ ई० से इन दोनों के सम्बन्धों में कुछ अंतर आ गया । इन दोनों के सम्बन्धों में पहले जैसी मधुरता न रहने का एक कारण यह है कि "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" के १८ दिसम्बर १९६६ के अंक में "आर्थिक निश्चिन्तता और कला साधना" शीर्षक एक परिचर्चा प्रकाशित हुई थी जिसमें बच्चन जी ने पन्त जी पर अकारण ही आक्षेप किये थे । इस सम्बन्ध में पंतजी ने एक पत्र में लिखा है :-

"- - - अपने वक्तव्य में तुमने अकारण ही मुझ पर आक्षेप किया है । ऐसी ही भ्रामक बातें"कवियों में सौम्य संत " में भी तुम लिख चुके हो । मैंने भी उसी निर्ममता के साथ उसका उत्तर लिखा है, अभी यह नहीं तय किया है कि उसे छपाने भेजूं या नहीं । शांता मना करती है , बहरहाल उत्तर मेरे पास लिखा रखा है ।"[3]

---

१ "पंत के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ० २६५ ।

२ "कवियों में सौम्य सन्त" (१९६०), पृ० ११५ ।

३ "पंत के दो सौ पत्र", पृ० २४३-४४ ।

पंत जी और बच्चन जी के सम्बन्धों में अंतर आ जाने का अन्य बड़ा कारण "पंत के दो सौ पत्र बच्चन के नाम" पुस्तक का प्रकाशित होना है । इस सम्बन्ध में डा० शांति जोशी ने अपनी पुस्तक "सुमित्रानन्दन पन्त : जीवन और साहित्य" में विस्तार से चर्चा की है । इसमें कहा गया है कि मई सन् '७० में जब "पंत के सौ पत्र बच्चन के नाम" प्रकाशित हुए तो पंत थोड़ा परेशान हुए । उन्होंने बच्चन जी से कहा पर बच्चन जी की हठधर्मिता । लाचार होकर उन्होंने राजपाल प्रकाशन से कहा कि उनके पत्र बिना उन्हें दिखाए प्रकाशित न किये जायें । एक पत्र बच्चन जी को भी इस आशय का डाला ।[1] इस बीच बच्चन जी ने "पंत के दो सौ पत्र" सन्मार्ग से छपवाकर पंत जी को दस प्रतियां भेंट स्वरूप भेज दीं। इससे पंत जी दुविधा में पड़ गये । वकीलों की राय ली गयी । नोटिस देने का फैसला हुआ । पंत जी ने सन् १९६० में जो अनुमति बच्चन जी को पत्रों के छपवाने की दी थी, वह २६-३-१९७१ के पत्र द्वारा वापस ले ली और लोकभारती से "दो सौ पत्र" की संशोधित कापी भेजी । जब पुस्तक संशोधित होती नहीं देखी, तब अदालत में मुकदमे की नौबत आ गयी ।[2] आखिर २-८-१९७१ को पंत जी ने सन्मार्ग के प्रोप्राइटर प्रेमनाथ जी के नाम एक समझौतानामा लिखकर विवाद को समाप्त किया ।

प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक ने बच्चन जी के पास पत्र भेज कर इस घटना पर प्रकाश डालने की प्रार्थना थी । इस पर उन्होंने सूचित किया है कि-

"पंत के दो सौ पत्र मैंने प्रकाशित किये जिस रूप में वे लिखे गए थे । वे चाहते थे कि काट-छांटकर प्रकाशित किया जाय । मैं तैयार नहीं हुआ, इसलिए उन्होंने मुकदमा दायर कर दिया पर अपना पक्ष कमजोर पाकर मुकदमा वापस ले लिया । पुस्तक उसी रूप में है जिसमें मैंने छपाई थी ।"[3]

"आजकल" में प्रकाशित "दो कविता-पीढ़ियों का साक्षात्कार" में भी उन्होंने इसी प्रकार के विचार प्रकट करते हुए कहा है कि -" मैं तो एक वी०आई०पी० के पत्रों को हूबहू छपवाना चाहता था । क्योंकि मैं पत्र-

---

१ "सुमित्रानन्दन पन्त : जीवन और साहित्य" (भाग-२)(१९७७), पृ० ६२१ ।

२ -वही-, पृ० ६२४ ।

~~३ "आजकल", [illegible]~~

३ "बच्चन जी से प्राप्त एक व्यक्तिगत पत्र से ।

-साहित्य के महत्व को समझता था ।"[1] इस प्रकार इस घटना से दोनों के स्नेहिल सम्बन्ध में दरार पड़ गयी ।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

डा० निर्मल बख्शी ने पंत जी के व्यक्तित्व का रेखांकन करते हुए लिखा है-"सुमित्रानन्दन पन्त का नाम लेते ही हृदय में ऐसी संश्लिष्ट भावना का चित्र अंकित हो जाता है जो कल्पना-सी-कोमल, भावुकता-सी मधुर, सुन्दरता-सी आकर्षक और चिन्तन-सी शांत एवं गम्भीर हो ।"[2] पंत जी के पत्रों को पढ़ने पर हमारे मन पर उनका ऐसा ही चित्र अंकित ह हो जाता है ।

१ - सहृदयता :

पन्त जी एक सुकुमार कवि और सहृदय व्यक्ति थे । साहित्यकारों और उनके परिजनों के प्रति उनके मनमें विशेष सहानुभूति थी । बच्चन जी के नाम सन् १९६०-१९६२ के बीच लिखे उनके पत्रों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि कांता भारती के प्रति उनके मन में अपार सहानुभूति थी ।[3] इसी प्रकार "शानी" की सहायता करने के लिए उन्होंने बच्चन जी को लिखा था :-

"शानी" एक गरीब किन्तु बड़ा प्रतिभासम्पन्न हिन्दी का कहानी उपन्यास लेखक है- है तो मुसलमान पर लिखता हिन्दी में हैं ।- - - एक पुस्तक "शांत वनों का द्वीप" बस्तर के आदिवासियों के बारे में लिखी है जिसे वह राजपाल से छपवाना चाहता है । क्या तुम विश्वनाथ जी से पूछ सकते हो इस बारे में ?"[4]

इससे प्रकट होता है कि पन्त जी सुयोग्य व्यक्ति की सहायता करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे ।

२ - शालीनता :

पन्त जी प्रकृति से सरल और शालीन थे । "खादी के फूल" शीर्षक पुस्तक के सम्बन्ध में उन्होंने बच्चन जी को लिखा था:-"खादी के फूल" को यथावत् छपने दो । मैं भी चाहता हूं कि यह सम्मिलित नामों में

१" आजकल", नवम्बर १९७७, पृ० १७ ।

२" पंत-साहित्य : आत्मकथात्मक परिदृश्य"(१९७७), पृ० ३६ ।

३" पंत के सौ पत्र :बच्चन के नाम"(१९७०),पृ० ३८,४८ तथा ५९ ।

४" पंत के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम(१९७१),पृ० ४१ ।

ही छपे और सम्पूर्ण पुस्तक की रायलटी यथावत् तुम्हीं को मिले - वह तो केवल मेरे स्नेह का प्रतीक है ।"[1]

एक अन्य पत्र में "रूपाम्बरा" पुस्तक के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है-

" श्री अज्ञेय जी के दो पत्र आ चुके हैं । वे राष्ट्रपति के हाथ से मुझे अपनी "रूपांबरा" भेंट कराना चाहते हैं- मुझे तो यह सब अनुचित लगता है ।"[2]

३ - विनोद-वृत्ति:

पन्त जी का स्वभाव बड़ा विनोदी था । उनके विनोद में चातुर्य (*wit*) की मात्रा अधिक मिलती है । हिन्दी पत्र-साहित्य में बौद्धिक विनोद की दृष्टि से पन्त जी के पत्रों को सर्वोच्च स्थान दिया जा सकता है । वे नाना प्रकार से विनोद करने की कला में निपुण थे । जैसे-

बच्चन जी की "नागरगीता" पर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते हुए वे लिखते हैं- "तुम्हारी गीता का दुग्धामृत पान कर पूर्ण स्वस्थ हो जाऊंगा - जय हो व्यास महाराज की-पाय लागन ।"[3]

मलूकदास के दोहे पर रचित मोहनलाल गुप्त की पैरोडी के सन्दर्भ में अपनी पैरोडी प्रस्तुत करते हुए दिनांक १६-५-६३ को बच्चनजी के नाम प्रेषित पत्र में उन्होंने अपनी विनोद-वृत्ति का सुन्दर परिचय दिया है । देखिए-

"- - - मोहनलाल गुप्त की पैरोडी पसंद आई-" नेता करै न चाकरी, मंत्री करै न काम"- पर मलूक दास के मूल दोहे का जो अर्थ तुमने लगाया है वह मुझे ठीक नहीं जंचा । मुझे भी एक दोहा लिखने की प्रेरणा हुई है :

बच्चन करता चाकरी, तेजी करती काम[4]
सच्चिदपंत कहते तभी सबके दाता राम ।"

इससे स्पष्ट है कि पन्तजी के पत्रों में व्यक्तिगत स्तर की किन्तु चातुर्य युक्त हंसी-ठिठौली पर्याप्त मात्रा में मिलती है ।

---

१ "पंत के सौ पत्र", पृ० ८८ ।
२ "पंत के सौ पत्र- बच्चन के नाम" (१६७०), पृ० २१ ।
३ "पंत के दो सौ पत्र-बच्चन के नाम" (१६७१), पृ० २३४ । ४ वही पृ० ७३,७४

(ग) दृष्टिकोण या विचारधारा :

पन्त जी की विचारधारा पर युग और युग-विधायक विभूतियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है । परन्तु उनकी विचारधारा की चरम परिणति हमें उनके "लोकायतन" में मिलती हैं । पन्त जी ने बच्चन जी के नाम लिखे पत्रों में इस महाकाव्य की विस्तृत और विशद व्याख्या की है । इस महान् कृति के सम्बन्ध में उनका मत है कि-

"- - - सारा लोकायतन ही मेरी अन्य रचनाओं से बहुत सरल है । मध्यबिन्दु (ज्ञान) लोकायतन की गीता है जिनमें मैंने उपनिषदों-वेदों के मंत्रों के मुख से मध्ययुगीन राख या सांप्रदायिक मतवादों की राख हटाकर आलोक के पावक को अपने मौलिक जाज्वल्यमान रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है ।"[1]

इस प्रकार "लोकायतन" का मुख्य आदर्श विश्व जीवन को अधिक परिपूर्ण और संस्कृत बनाना हैं । इस कृति पर अरविन्द-दर्शन का प्रभाव देखा जा सकता है । पन्त जी ने अपने पत्रों में इस महाकाव्य के महत्वपूर्ण अंशों की जिस ढंग से व्याख्या की है, उससे उनके भावक-व्यक्तित्व का स्पष्ट रूप से परिचय मिलता है । डा० सुरेशचन्द्र गुप्त के शब्दों में "कवि के आलोचना-सिद्धान्तों का अपना पृथक् महत्व होता है । उनके अध्ययन से उसके व्यक्तित्व का आत्मीयतापूर्ण अध्ययन करने में अधिक सुविधा रहती है ।"[2] इस दृष्टि से इन पत्रों का पृथक् महत्व है ।

पन्त जी के पत्र उनके कलात्मक व्यक्तित्व के दर्पण हैं । उनके पत्रों के अक्षर आर्टिस्टिक होते थे । जिन्हें बिना अभ्यास किये समझा नहीं जा सकता । "निराला" जी ने उनके पत्रों की लिखावट के सम्बन्ध में उनके नाम एक पत्र में लिखा था -" आप मुक्ताओं से अक्षर लिखते थे, अब पत्र लिखने के समय ही आपको इतनी जल्दी रहती है । कहीं-कहीं मैं पढ़ भी नहीं सका ।"[3]

पन्त जी पत्रों में प्राय: सन् का संकेत नहीं करते थे । अपने पत्रों में अंग्रेजी के शब्दों और वाक्यों का भी वे प्रचुर प्रयोग करते थे । पत्रों

---

१ "पंत के दो सौ पत्र- बच्चन के नाम" (१९७१), पृ० १३२ ।
२ "आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धांत" (१९६०), विषय-प्रवेश, पृ० २३ ।
३ "निराला की साहित्य-साधना - ३" (१९७६), पृ० २५४ ।

की भाषा भावानुकूल और परिष्कृत है । वाक्यरचना में कहीं सादगी तो कहीं अलंकृति का स्पर्श भी मिलता है । उनके पत्रों की सबसे बड़ी विशेषता है- माधुर्यसिक्त व्यंग्यविनोद । उनके सृजन, जीवन और व्यक्तित्व के जो महत्वपूर्ण सूत्र इन पत्रों में प्राप्त होते हैं, वे अन्यत्र दुर्लभ हैं ।

८ - यशपाल (१९०३-१९७६)

यशपाल जी समाजवादी चेतना के साहित्यकार थे । वे हिन्दी कथा-साहित्य के ऐसे मोड़ पर उपस्थित हैं, जहां वे जीवन-यथार्थ का उसके सामाजिक सन्दर्भों में पेश करने के काम को आगे बढ़ाते हैं, जिसकी शुरूआत प्रेमचन्द जी ने अपनी मानवीय संलग्नता के साथ की थी ।

यशपाल जी का पत्र-साहित्य :

यशपाल जी हिन्दी के उन पत्र-लेखकों में से थे जो आवश्यक पत्रों का यथाशीघ्र उत्तर देते थे । जब वे आंखों की बीमारी से बुरीतरह पीड़ित थे, तब भी उन्होंने पत्रों के उत्तर लिखने और पढ़कर सुनाने के लिए एक आदमी रख लिया था ।[१] किसी कारणवश पत्रों के उत्तर में विलम्ब हो जाता तो वे पत्र में उसका स्पष्टीकरण देकर मित्रों को अन्यथा न लेने का अनुरोध करते थे ।[२] देश-विदेश के अनेक साहित्यकारों से उनका पत्र-व्यवहार हुआ करता था । उनके पत्रों का एक स्वतंत्र संकलन मधुरेश के सम्पादकत्व में प्रकाशित हो चुका है । उनके अनेक महत्वपूर्ण पत्र शोध-प्रबन्धों के परिशिष्टों तथा पत्र-पत्रिकाओं में उपलब्ध होते हैं ।

"यशपाल के पत्र" शीर्षक पुस्तक में मधुरेश के नाम लिखे यशपाल के ७१ पत्र संकलित हैं । ये पत्र फरवरी १९५५ से शुरू होकर मई १९७६ को

---

१ "यशपाल के पत्र" (१९७७), भूमिका, पृ० २९ ।

२ विश्वम्भर "मानव" के नाम यशपाल जी का १४-३-१९७५ का पत्र :
"जिस समय आपका कार्ड आया, मैं सुदूर हरियाणा अम्बाला के पास बीमार पड़ा था । - - - विश्वास है, पत्र के उत्तर में विलम्ब से अन्यथा न मानेंगे" ("लेखकों के पत्र", हिन्दुस्तानी, जुलाई सितम्बर १९७६, पृ० ४२)

३ "कर्णिका" जनवरी-फरवरी, १९७६, पृ० -२९- ।

३

समाप्त होते हैं । इनमें से कुछ पत्र यशपाल जी के जीवनकाल में "माध्यम" में प्रकाशित हो चुके थे । इन पत्रों से गुजरने के पूर्व हमें सम्पादक मधुरेश की लम्बी भूमिका से गुजरना पड़ता है । जैसा कि डा० प्रेमशंकर ने कहा हैं, मधुरेश यशपाल को एक सहज मनुष्य के रूप में देखते पाते हैं - एक अकृत्रिम, खुला हुआ दरियावदिल व्यक्तित्व ; मेहमानेबाजी में उनका जवाब नहीं, हर एक का खुले दिल से स्वागत-सत्कार ; बेतकल्लुफ और खुशमिजाज ।[1] मधुरेश ने संग्रह की भूमिका में अपने नाम आये यशपाल जी के पत्रों की तुलना अन्य पत्र-संग्रहों में प्रकाशित पत्रों से करके इन पत्रों का वैशिष्ट्य भी प्रकट किया है । उनका मंतव्य है कि इन पत्रों को पढ़कर यशपाल के सा-हि साहित्य को समझने में बेहिसाब मदद मिलती है । उन्होंने स्वीकार किया है कि इन पत्रों का स्तर गहरी आत्मीयता के स्म संस्पर्श से प्राय: अछूता है । सम्बन्धों और भावनाओं का वैसा अपनापन भी इन पत्रों में नहीं है जैसा प्रेमचन्द के जैनेन्द्रकुमार को लिखे गये बहुत से पत्रों में है । लेकिन इन पत्रों में सहज और आत्मीय प्रसंगों का नितांत अभाव भी नहीं है ।

पत्रों में प्रतिबिम्बित यशपाल जी का व्यक्तित्व :

यशपाल जी के साहित्यिक व्यक्तित्व के अतिरिक्त उनका निजी व्यक्तित्व और उनका क्रांतिकारी व्यक्तित्व भी उनके पत्रों में प्रतिबिम्बित हुआ है । उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को समझने के लिए उनके निजी व्यक्तित्व और क्रांतिकारी व्यक्तित्व को समझना आवश्यक है ।

(क) जीवनी-सूत्र :

यशपाल जी के निजी व्यक्तित्व तथा क्रांतिकारी व्यक्तित्व का रोचक वर्णन उनकी पुस्तक "सिंहावलोकन" में मिलता है । "सिंहावलोकन" उनके तथा उनके साथियों के क्रांतिकारी जीवन का रोचक इतिहास है । "सिंहावलोकन" के साथ इन पत्रों को जोड़कर हम निरन्तर सर्जनरत - कथाकार के वृत्त को पूरा कर सकते हैं । यशपाल जी ने दिनांक २२-२-१९५५ को मधुरेश के नाम पत्र में अपने क्रांतिकारी व्यक्तित्व का परिचय देते हुए लिखा है :-

१ "यशपाल के पत्र" (१९७७), पृ० ४३ ।
१ "समीक्षा" जनवरी-फरवरी, १९७९, पृ० २९ ।

"मैं स्वयं "हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना" अर्थात् भगतसिंह , आजाद आदि के सहयोगी के रूप में फरारी गुप्त जीवन - बिताकर पुलिस से गोली भी चला चुका हूं । वायसराय की ट्रेन के नीचे बम विस्फोट करने मुझे ही भेजा गया था ,"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि यशपाल जी ने अपनी पुस्तक "सिंहावलोकन" में जिन प्रसंगों की विस्तार से चर्चा की है उनकी झलक यशपाल जी के पत्रों में भी यत्र-तत्र मिल जाती है ।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

"यशपाल के पत्र" की भूमिका में मधुरेश यशपाल जी के व्यक्तित्व के मानवीय पक्ष को उजागर कर सकने में काफी सफल हुए हैं, जिससे यह बात साफ हो जाती है कि यदि व्यक्ति की निजी दुनिया और उसके लेखन में संवेदन का = फासला बहुत ज्यादा होगा तो रचना भारी छद्म का शिकार हो सकती है । लेखक को इन्सान भी तो बनना ही होगा ।

१ - विनम्रता :

यशपाल जी के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता उनकी विनम्रता है । इस सम्बन्ध में मधुरेश ने लिखा है कि " यशपाल अपने स्वभाव के कारण प्राय: घर के नौकर को भी यह नहीं लगने देते कि वह नौकर है ।[2]

एक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित साहित्यकार होते हुए भी यशपाल जी अपने पाठकों और आलोचकों के सुयोग्य सुझावों तथा मंतव्यों का सदैव स्वागत करते थे । श्री मधुरेश ने उनकी "शकुन्तला" पुस्तक के नाम बदलने का सुझाव दिया था , जिसके उत्तर में उन्होंने लिखा है-

"आपने जिस पत्र में शकुन्तला के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है वह अभी तक ढूंढ़ नहीं सका हूं । नाम के सम्बन्ध में "अप्सरा का श्राप" आपका सुझाव बहुत अच्छा लगा ।" माया" में किश्त प्रकाशन से पूर्व मिलता तो नाम बदल देता । अब पुस्तक रूप में ही हो सकेगा ।[3]

इस प्रकार यशपाल जी विनम्रता की प्रतिमूर्ति थे ।

---

१ "यशपाल के पत्र" (१९७७), पृ० ४३ ।
२ "यशपाल के पत्र" (१९७७), पृ० २१ ।
३ -वही- पृ० ७१ ।

२ - समयज्ञता :

यशपाल जी एक कर्मशील व्यक्ति थे । समय का मूल्य वे बराबर समझते थे । अत: वे बहसों में उलझकर अपना वक्त जाया करने के विरुद्ध थे । वे विवादों से प्राय: दूर रहते थे । मधुरेश को एक पत्र में वे लिखते हैं:-

"मैं स्वास्थ्य विशेषकर आंखों के कष्ट के कारण बहुत कम लिखवा पाता हूं, इसलिए विवाद से दूर ही रहना चाहता हूं ।"[१]

३ - साहित्यिकों तथा उनकी कृतियों के प्रति समादर :

यशपाल जी के मन में साहित्यिकों और शोधार्थियों के प्रति समादर और सहानुभूति की भावना रहती थी । श्री महावीरमल्ल लोढ़ा ने अपने शोध-विषय "हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन " मज पर उनसे विचार-विमर्श करने की इच्छा प्रकट की थी जिसके उत्तर में उन्होंने लिखा था :-" आपने मुझसे जिस सहयोग की इच्छा प्रकट की है आपके यहां आने पर सामर्थ्य और अवसर के अनुकूल उसके लिए अवश्य यत्न करूंगा ।"[२]

यशपाल जी उनको प्राप्त भेंट पुस्तकें बड़े आदर के साथ अपने पास रखते थे । यदि कोई विशेष कार्य के लिए पुस्तक ले जाता तो काम पूरा होने पर पुस्तक लौटा देने का आग्रह करना वे न भूलते थे । इस सम्बन्ध में मधुरेश को लिखित एक पत्र का निम्नांकित अंश दृष्टव्य है :-

"- - - अश्क जी की " सत्तर कहानियां" की प्रति, आपका काम पूरा हो जाए तो मुझे लौटा दें । चाहता हूं, भेंट में प्राप्त पुस्तक मेरे पास रहे ।"[३]

(ग) दृष्टिकोण :

यशपाल जी को सामान्यतया प्रेमचन्द जी की परम्परा का कथाकार समझा जाता हैं । इस सम्बन्ध में अपना मंतव्य प्रकट करते हुए उन्होंने मधुरेश को लिखा है :-

---

१ यशपाल के पत्र, पृ० ४५ ।

२ " हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन "(१९७२), परिशिष्ट-ग, पृ० २९३

३ " यशपाल के पत्र "(१९७७), पृ० ४९ ।

"मैंने सचेत रूप में कभी प्रेमचन्द की परम्परा निभाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लिया। प्रेमचन्द की सप्रयोजन लिखने की प्रवृत्ति और कथा - कौशल का मेरे मन में बहुत आदर है। इसका प्रभाव मेरे ऊपर हो सकता है। - - - उनके और मेरे आदर्शों में भेद स्पष्ट है। मेरे विचार में वह पाठक की सहृदयता को छूना चाहते हैं और मैं न्याय बुद्धि को।"[1]

एक अन्य पत्र में अपने दृष्टिकोण के विषय में उन्होंने लिखा है कि - "यह कहना बहुत कठिन है कि कौन एक उपन्यास मेरे दृष्टिकोण को पूर्णतः प्रस्तुत करता है। कहना ही है तो सिद्धांत रूप में "दिव्या" और "अमिता" को समझ लीजिए। आधुनिक जीवन के सन्दर्भ में "झूठा-सच" को कहा जा सकता है।"[2]

इस प्रकार ये पत्र यशपाल जी के व्यक्तित्व के कई सूत्र खोलते हैं।

६ - वासुदेवशरण अग्रवाल (१६०४-१६६६) :

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल भारतीय संस्कृति के अन्यतम व्याख्याता और अपने समय के धुरंधर विद्वान् थे। श्री कृष्णानन्द गुप्त ने उनकी गणना कपिल और कणाद की कोटि के विद्वानों में की है।[3] वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, व्याकरण, साहित्य आदि पर उन्होंने अपने मूल्यवान विचार और निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं। उनके पत्रों में भी हमें उनके प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व का दर्शन होता है।

डा० अग्रवाल का पत्र-साहित्य :

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल एक उच्च कोटि के पत्र-लेखक थे। पत्र-लेखन उनका प्रिय विषय था। मित्रों के पत्रों का उत्तर देने के लिए वे दो से तीन दिन का उपवास भी कर लेते थे।[4] पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम प्रेषित एक पत्र में उन्होंने लिखा है :-

"--- मुझे तो डाक का रोग है। पत्रों से रस चूसता हूं।"[5]

---

१ यशपाल के पत्र, पृ० ४८ । २ -वही-, पृ० ६४ ।

३ "ज्ञानमूर्ति आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल" (१६७४), संपा० कृष्णवल्लभ द्विवेदी, पृ० १०१ ।

४ "डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१६७४), भूमिका, पृ० १५ ।

५ - वही-, पृ० १६० ।

डा० अग्रवाल के कुछ महत्वपूर्ण पत्र उनके जीवनकाल में ही पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने प्रकाशित किये थे । उनके देहावसान के बाद चतुर्वेदी जी बाबू वृन्दावनदास को डा० अग्रवाल द्वारा विभिन्न विद्वानों को लिखे गये पत्र एकत्र करने की प्रेरणा देते रहे । बाबू वृन्दावनदास ने बड़े परिश्रम से डा० अग्रवाल के पत्र एकत्रित किये और सन् १९७४ ई० में "डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" शीर्षक से उन्हें प्रकाशित किये ।

"डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" शीर्षक संग्रह में डा० अग्रवाल द्वारा श्री कृष्णानन्द गुप्त , अगरचन्द नाहटा, बनारसीदास चतुर्वेदी, डा० सत्येन्द्र, प्रभुदयाल मीतल आदि विद्वानों को लिखे गये ३०२ पत्र संकलित हैं । इन पत्रों में जनपदीय जीवन के सूक्ष्म अध्ययन पर सर्वाधिक बल दिया गया है । पुस्तक के अंत में ६ निबन्धों द्वारा डा० अग्रवाल की विचारधारा और शैली सम्बन्धी विशेषताओं का परिचय कराया गया है । डा० अग्रवाल एक सच्चे पृथ्वी-पुत्र थे । उनका ऋषिकल्प व्यक्तित्व इन पत्रों में स्पष्ट रूप से अंकित हैं ।

पत्रों में प्रतिबिम्बित डा० अग्रवाल का व्यक्तित्व :

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र हिन्दी साहित्य की अनमोल निधि है । डा० अग्रवाल के अध्ययन की सुवास और उनके व्यक्तित्व की ऋजुता इन पत्रों में खूब झलकती है ।

(क) जीवनी-सूत्र :

डा० अग्रवाल जीवन भर प्रसिद्धि और आत्म-विज्ञापन से दूर रहे, किन्तु अपनी मृत्यु के कुछ मास पूर्व उन्होंने पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को ऐसे दो पत्र लिखे जिनमें उन्होंने दिल खोलकर अपने व्यक्तिगत जीवन की चर्चा की है । ये पत्र एक तरह से उनकी संक्षिप्त आत्मकथा ही है । दिनांक ९-६-१९६६ को लिखे पत्र में अपने जन्मकाल, जन्मस्थान, पितामह के व्यक्तित्व आदि के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है :-

"मेरा जन्म १९०४ में मेरठ जिले के खेड़ा नामक गांव में हुआ । मेरे पितामह ठेठ गांव के व्यक्ति थे । उनकी शिक्षा लगभग नहीं के बराबर थी । थोड़ी हिन्दी पढ़ लेते थे और अपना हिसाब-किताब मुड़िया में

लिखा करते थे । पर वे अत्यन्त प्रखर बुद्धि के पुरुष थे । सत्य और न्याय में उनकी बड़ी निष्ठा थी । सन् ४० तक लगभग दो मास प्रतिवर्ष मैं उनके पास रहा करता था ।"[1]

अपनी शिक्षा आदि के बारे में डा० अग्रवाल ने इसी पत्र में लिखा है :-

"मेरी शिक्षा का आरम्भ देहाती मदर्से में हुआ । अपने पितामह की कुशाग्र बुद्धि और उत्तम स्मृति मुझे विरासत में मिली । मेरे पिता जी ५ भाई थे । घर भर में कुछ अंग्रेजी पढ़ने का संयोग उन्हें ही मिला । जब वे सन् १९१२ में लखनऊ में नौकरी और व्यापार के सिलसिले से गये तो मेरी शिक्षा का क्रम ठीक से चल निकला । हमारे देश में जितनी शिक्षा कोई पा सकता है वह सब पिताजी ने मेरे लिये सुलभ कर दी । हाईस्कूल, इण्टर, बी०ए०, एम०ए०, पी०-एच०डी०, डी०लिट० तक की सीढ़ियां मैंने पार कर लीं ।"[2]

इस प्रकार डा० अग्रवाल के पत्रों में उनकी जीवनी-विषयक तथ्य सहज रूप से उपलब्ध हो जाते हैं ।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल भारतीय संस्कृति के ज्योतिर्धर थे । ज्ञान की आराधना उनके जीवन का व्रत थी । उनके पत्रों में उनका महिमामंडित व्यक्तित्व पूर्णतः प्रकट होता है ।

१ - अध्ययनशीलता :

अध्ययन और मनन डा० अग्रवाल के श्वास-प्रश्वास थे । पुरातत्त्व, इतिहास, पुराण, साहित्य, लोकभाषा आदि अनेक विषयों में वे केवल रुचि ही नहीं रखते थे, वरन् उनको सदा नवीन शोधों से अग्रसर करते रहते थे । श्री कृष्णानन्द गुप्त के नाम लिखे उनके पत्रों में हमें लोकवार्ता के सम्बन्ध में उनके गहन अध्ययन का परिचय मिलता है । २३-३-१९४४

---

१. "डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ० २८९ ।

२. -वही-, पृ० ।

को लिखे पत्र में उन्होंने कहा है -" लोक वार्ता एक जीवित शास्त्र है । सहानुभूति के साथ उसका अध्ययन अपनी संस्कृति के भूले हुए पथों का उद्घाटन कर सकता है ।"[1] अगरचन्द नाहटा के नाम लिखे पत्रों से पता चलता है कि डा० अग्रवाल को जैन-साहित्य में बड़ी रूचि थी । उन्होंने श्री नाहटा की सहायता से जैन-साहित्य की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन किया और श्री नाहटा से जैन साहित्य पर अनेक लेख लिखवाकर यू०पी० हिस्टॅारिकल सोसायटी के जर्नल, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, लोकवार्ता आदि में प्रकाशित करा दिये । इस प्रकार डा० अग्रवाल के पत्रों में उनके अध्ययन, मनन और चिन्तन की स्पष्ट छाप मिलती है ।

२ - शब्दों से अपूर्व अनुराग :

डा० अग्रवाल को शब्दों से अपूर्व अनुराग था । लोकभाषा के नये शब्द पाकर उन्हें जैसे निधि मिल जाती थी । श्री रामचन्द्र वर्मा जी के नाम उन्होंने शब्द-कोश-रचना के सम्बन्ध में एक लम्बा पत्र भेजा था । इसमें उन्होंने लिखा कहा है कि -" प्रत्येक पेशे के सैकड़ों शब्द भाषा में भरे हैं जो कोशकार से बचे रहते हैं । - - - - शब्दों की व्युत्पत्ति, उनके विकास और बनने के निश्चित नियम हैं ।"[2] पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखित एक पत्र में उन्होंने सुझाव दिया है कि -

" स्थूल भौतिक जगत् मानों हमारे साहित्य-सेवियों से भरा हुआ है । उसे शब्दों के द्वारा कसकर पकड़ने की आवश्यकता है । हम में से प्रत्येक व्यक्ति को दो-दो हजार नये नाम और शब्द जनपद-साहित्य से सीखने के लिए तैयार हो जाना चाहिए ।"[3]

इससे स्पष्ट होता है कि डा० अग्रवाल शब्दों के इतिहास के धनी थे ।

---

१ " डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ० ३५

२ -वही-, पृ० १८४-८५ ।

३ "डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ० १९० ।

३ - संयम और तपस्या :

डा० अग्रवाल संयम और तपस्या की मूर्ति थे । भारतीय संस्कृति तथा साहित्य के नवनिर्माण के महायज्ञ के लिए उन्होंने अपने शरीर, मन और प्राण से हवन किया । उनके संयम-सम्बन्धी विचारों को पं० बनारसीदास चुर्वेदी के नाम २०-४-१६४४ को लिखे पत्र के निम्नांकित अंश में देखिए-

" मैं भी मनुष्य हूं, मनवाला हूं । जहां मन है वहां मनसिज है । मानस जन्मा काम को वश में करना बुद्धि और मन के धरातल को ऊंचा उठाने की पहली सीढ़ी है, ऐसा मेरे आप्त पुरुषों ने मुझे बताया है ।"[1] इस प्रकार डा० अग्रवाल संयम और तप के बल पर ही भारतीय संस्कृति और साहित्य की सेवा-साधना में सफल हुए थे ।

४ - प्रकृति-प्रेम :

प्रकृति का दर्शन और खेतों की सैर डा० अग्रवाल के लिए जीवित साहित्य या सशरीर अष्टाध्यायी की सैर थी । उनके पत्रों में अनेक स्थानों पर उनका प्रकृति-प्रेम मूर्तिमन्त हो उठा है । जैसे, यमुना की वेगवती धारा का यह चित्र देखिए -

" प्रिय चतुर्वेदी जी,

रात के १० बजे हैं । यमुना की वेगवती धारा समने बह रही है । उसकी कल-कल ध्वनि बरबस अपनी और ध्यान खींचती है । प्रकृति का कैसा सुन्दर क्रीड़ास्थल इस उपत्यका की गोद में है ।"[2] नि:सन्देह ही डा० अग्रवाल प्रकृति के प्रेमी थे, प्राकृतिक जीवन के पक्षपाती थे ।

१" डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र, पृ० ९२ ।
१ -वही-, -पृ० -१५२- ।

२ -वही-, पृ० १०४-१०५ ।

(ग) दृष्टिकोण :

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ज्ञान के एकनिष्ठ साधक थे । अहर्निश अध्ययन और लेखन ही उनकी दिन-चर्या थी । साहित्य के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण प्रकट करते हुए उन्होंने पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखा है :-

" यों तो साहित्य का क्षेत्र बहुत विशाल है पर किसी भी भाषा के निखिल वाङ्मय के तीन भाग किये जा सकते हैं । प्रत्येक लेखक इन्हें ध्यान में रखकर अपने-अपने विषयों का और कार्यक्षेत्र का वर्गीकरण कर सकता है । ये तीन विभाग मौलिक हैं और प्रत्येक जाति की सभ्यता में पाये जाते हैं । संक्षेप में उनका सूत्र यह है- पृथिवी, जन, ज्ञान, अर्थात्-

१ पृथिवी और उसका भौतिकरूप ,
२ पृथिवी पर बसने वाला जन समुदाय ,
३ उस जन का मानसिक चिंतन अथवा ज्ञान-दृष्टि ।

प्राचीन परिभाषा में कहें तो पृथिवी के भौतिकरूप के अध्ययन को देवऋण, पृथिवी के भौतिक पर बसनेवाले जन के अध्ययन को पितृऋण और जन की ज्ञान-साधना के अध्ययन को ऋषि-ऋण कह सकते हैं । इन तीन ऋणों का उद्धार ही साहित्यिक का उद्देश्य होना चाहिए ।"[१]

इस प्रकार डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों में एक सच्चे साधक और साहित्य-सेवी का व्यक्तित्व सर्वत्र अपनी प्रभा बिखेरता है । अपनी सशक्त लेखनी तथा मौलिक चिन्तन-धारा के कारण डा० अग्रवाल का हिन्दी पत्र-साहित्य में विशिष्ट स्थान है । वे हिन्दी के एक महान् पत्र-लेखक थे । जो विषय उनके सामने होता, उस पर वे पूर्ण तन्मयता से विचार करते और जो कुछ उनकी समझ में आता उसे वे पूर्ण ईमानदारी के साथ लिख देते थे । यही कारण है कि उनके पत्र हृदय को छू जाते हैं । उनका एक-एक पत्र, साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, उसमें अपूर्व शोध-सामग्री निहित है । पं० बनारसीदास चतुर्वेदी[२] के नाम लिखे उनके पत्र वस्तुतः जनपदीय आंदोलन के विश्वकोष हैं । अतः हिन्दी पत्र-साहित्य में इन पत्रों का पृथक् महत्व है ।

१ "डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ० १३४-३५ ।
२ -वही-, भूमिका, पृ० २९ ।

१० - वृन्दावनदास (१६०६ ई०) :

बाबू वृन्दावनदास ब्रज की विभूति हैं । वे अच्छे लेखक ही नहीं हैं, साहित्यिक संगठनों के लिए भी जी-जान से कार्य करनेवाले कुशल संगठक भी हैं । विविध प्रकार की साहित्यिक सेवाओं के कारण उनका जन-सम्पर्क बहुत बढ़ गया है और पत्र-व्यवहार द्वारा वे उसको पुख्ता करते रहते हैं । वे एक अच्छे पत्र-लेखक भी हैं और उत्तम पत्र-संग्राहक भी ।

बाबू वृन्दावनदास का पत्र-साहित्य :

ब्रज-साहित्य एवं संस्कृति के साथ-साथ हिन्दी के निष्ठावान उन्नायक बाबू वृन्दावनदास वस्तुत: "व्यक्ति में संस्था" हैं । आज सम्पूर्ण हिन्दी-जगत् उनकी हिन्दीसेवा के प्रति विनत हैं । उन्होंने महान् संस्कृति-सेवी डा० वासुदेवशरण अग्रवाल एवं लब्धप्रतिष्ठ साहित्य-सेवी पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्रों का सम्पादन करके हिन्दी पत्र-साहित्य के विकास में बहुमूल्य योगदान दिया है । श्री रमण शांडिल्य ने "बाबू वृन्दावनदास के पत्र "शीर्षक पुस्तक में बाबू जी के विशिष्ट पत्रों का सम्पादन करके स्तुत्य कार्य किया है ।

बाबू वृन्दावनदास हिन्दी के उन साहित्य-सेवियों में हैं जो प्राय: सभी पत्रों का अविलम्ब उत्तर देते हैं । उक्त पत्र-संग्रह में हिन्दी के ७२ लेखकों के नाम बाबूजी के ४६१ पत्र संकलित हैं । इनमें कई लेखक बहुत ही प्रसिद्ध हैं । जैसे- श्री अगरचन्द नाहटा, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, डा० कन्हैयालाल सहल, कुबेरनाथ राय, कृष्णानन्द गुप्त, पं० गणेश चौबे, रामनारायण उपाध्याय आदि । साथ ही प्रसिद्ध सोवियत विद्वान् डा० वि०एन० चैनिशेव के नाम जो १६ पत्र हैं वे अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज हैं । कारण यह है कि डा० चैनिशेव ने समय-समय पर उनसे कुछ प्रश्न किये हैं जिनका बाबूजी ने बड़ा विस्तृत उत्तर दिया है । प्रस्तुत संग्रह के अनेक पत्रों में लोक-साहित्य, ब्रज-साहित्य, कला , संस्कृति एवं दर्शन, हिन्दी के विषय में विचार, प्रादेशिक भाषाओं के सम्बन्ध में हिन्दी एवं पत्रकारिता आदि विभिन्न दिशाओं में गम्भीर चिन्तन से परिपूर्ण पत्र भी हैं और ऐसे साहित्यकारों के अंतरंग का परिचय

देनेवाले पत्र भी, जिन्हें 'समकालीन इतिहास के दस्तावेज' कहा जाना न्यायोचित ही है । लगभग एक दशक के अन्तराल में फैले बाबू जी के व पत्रों से अनेक अछूते प्रसंगों का पता प्रथम बार हिन्दी-जगत् को चला है ।

पत्रों में प्रतिबिम्बित बाबू वृन्दावनदास का व्यक्तित्व :

हिन्दी के अनन्य उपासक, सफल सम्पादक, कुशल संगठक और साहित्य के प्रेरक साधक बाबू वृन्दावनदास के व्यक्तित्व की गणना उन साहित्य-सेवियों में की जा सकती है जिनका समय जीवन, साहित्य और संस्कृति की पुनीत सेवा के लिए समर्पित हो चुका है ।

(क) जीवनी-सूत्र :

साहित्य वारिधि बाबू वृन्दावनदास के जीवन की झांकी वस्तुत: कर्मण्य साहित्य-सेवारत व्यक्तित्व का विवरण है । यों तो उनके कर्मण्य जीवन के विविध आयाम हैं, किन्तु मौन साधक रूप में उनका साहित्यिक व्यक्तित्व ही उनके पत्रों में मुखर होता है । उन्होंने अपने पत्रों में कहीं-कहीं अपने बाल्यकाल पर प्रकाश डाला है । डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' ने अपने एक पत्र में उनसे प्रश्न किया था कि उनको लिखने की प्रेरणा कहां और कैसे प्राप्त हुई । इसके उत्तर में उन्होंने लिखा है -

'हमारे पितामह स्वर्गीय लाला श्यामलाल जी मथुरास्थ श्याम काशी प्रेस के संस्थापक थे । इस प्रेस से लगभग ४०० प्रकाशन निकले थे ।- - - मैं और मुझ से दो वर्ष छोटे भाई कुंजलाल अपने पितामह के पास प्रेस में रहते और सोते थे । - - - पितामह के नियंत्रण के कारण हमलोग गली, मुहल्ले अथवा बाजार में घूमने के बजाय प्रेस में ही अधिक रहते, वहां खुली जगह थी, पेड़ और गमले भी थे, वहीं खेलते और खेलते-खेलते थक जाते तो पुस्तकों के अथाह महासागर में गोते लगाते रहते । अनेक प्रकार की पुस्तकें पढ़ने का शौक बचपन से ही लग गया था । घण्टों तक पुस्तकें पढ़ते रहते । मुझे इतिहास सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने का शौक था । यही कारण है कि इतिहास मेरा बी०ए० तक खास ही विषय रहा । यदि एम०ए० करता तो भी शायद इतिहास में ही करता । बचपन से पुस्तक पढ़ते-पढ़ते मेरे मन में भावना आती कि मैं भी पुस्तक लिखूं या कम से कम लेख तो लिखूं ही ।- - -

आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि दस वर्ष की अवस्था में मैंने बाल सुलभ प्रयास के रूप में कहानी या संगीत लिख डाला था । कालेज पहुंचकर तो मैंने पत्रिका के लिए लेख लिखे और जब छप गये तो उत्साह का ठिकाना न रहा ।"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि बाबूजी को बचपन से ही ऐसा वातावरण प्राप्त हुआ था जिससे उनकी अध्ययन और लेखन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला ।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

बाबू वृन्दावनदास कथनी की अपेक्षा करनी के पक्षपोषक हैं । उनके पत्रों में उनके चरित्र के विविध पक्षों का उद्घाटन हुआ है । यहां कुछ प्रमुख पक्षों की झांकी प्रस्तुत की जाती है ।

१ - स्वाध्याय और लेखन :

जैसा कि ऊपर कहा गया है, बाबू वृन्दावनदास को बचपन से ही पुस्तकें पढ़ने और लेख लिखने का शौक था । डा० सत्येन्द्र उनको मूलत: लेखक मानते हैं- अध्ययनशील लेखक ।[2] डा० रामशंकर द्विवेदी को अपनी अल्पाक्षर विशिष्ट शैली का रहस्य बतलाते हुए उन्होंने १६-११-१६७० को प्रेषित पत्र में लिखा है -

"बाल्यकाल से ही मैं चिन्तनशील रहा हूं । मेरा मस्तिष्क समस्याओं में उलझा रहता है । चिन्तन जन्य तड़पन मुझे कुछ कहने को बाध्य करती है । दस वर्ष पहले अनेकों दशकों तक मैं अंग्रेजी के दैनिक समाचार पत्रों में "लैटर्स टू दि एडीटर" (*Letters to the Editor*) स्तम्भ के अन्तर्गत अपने पत्र मुद्रणार्थ भेजता रहा । यह अविकल पत्र-धारा अनेक वर्षों तक प्रवाहित रही ।[3] सहस्रों पत्रों की कतरनें मेरे पास सुरक्षित हैं ।"

इस प्रकार स स्वाध्याय और लेखन बाबूजी के जीवन की मुख्य प्रवृत्ति रही है ।

१ "बाबू वृन्दावनदास के पत्र" (१६७८), पृ० ४६-४७ ।
२ "भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य" (१६७०), वृन्दावनदास, भूमिका ।
३ "बाबू वृन्दावनदास के पत्र", पृ० १७७-७८ ।

२ - उदारता और गुणग्राहकता :

बाबू वृन्दावनदास के पत्रों में उनकी उदारता और गुणग्राहकता स्पष्ट रूप से फलकती है । वे जिन लोगों से प्रभावित होते हैं उनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं । श्री अनिलकुमार राय आंजनेय के नाम पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिखा है :-

"एक बात मैं आपसे कह दूं प्रशंसा करने में मुझे किसी प्रकार का भय भी नहीं है । पात्रता की सराहना गुण ग्राहकता का प्रथम सोपान है, उसकी उपेक्षा एक प्रकार की अवहेलना है जो कदापि वांछनीय नहीं ।"[1]

इस प्रकार बाबू जी उदारमना एवं गुणग्राही साहित्यिक हैं ।

३ - अन्तर्जनपदीय आन्दोलन की प्रवृत्ति :

बाबू वृन्दावनदास अन्तर्जनपदीय आन्दोलन के प्रकाश-स्तम्भ हैं ।[2] उनका विचार है कि प्रत्येक जनपद की एक आत्मा होती है । अत: लोक-साहित्य भारतीय संस्कृति एवं देशोन्नति के उन्नयन का मार्ग प्रशस्त करने के हेतु जनपद की आत्मा को जगाना अनिवार्य है । इस सम्बन्ध में उनके दो पत्रों के अंश यहां हम उद्धृत करते हैं :-

"मैं चाहता हूं कि अन्तर्जनपदीय परिषद को पुनर्जीवित कर उसे सक्रिय बनाया जाय ।"[3]

"लोक साहित्य पर अधिकाधिक काम किस प्रकार हो, जनपदीय आन्दोलन को किस प्रकार आगे बढ़ाया जाय इन सब पर आप जैसे मर्मज्ञों से ही विचार विमर्श कर चला जा सकता है ।"[4]

४ - हिन्दी की सेवा :

बाबू वृन्दावनदास हिन्दी के अनन्य उपासक हैं । हिन्दी के प्रति उनके हृदय में अगाध अनुराग है । वे हिन्दी को यथोचित प्रतिष्ठा दिलाने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं । डा० रामशंकर द्विवेदी को वे लिखते हैं-

---

१ "बाबू वृन्दावनदास के पत्र" (१९७८), पृ० २६५ ।

२ "बाबू वृन्दावनदास : एक समर्पित व्यक्तित्व", वृत्तांत, ४ अक्टू० १९७५ ।

३ "बाबू वृन्दावनदास के पत्र", पृ० ९५ ।

४ -वही-, पृ० १५९ ।

आजकल मेरा अधिकांश समय ब्रजभाषा और हिन्दी (जिन्हें मैं एक समझता हूं) की सेवा के लिए ही अर्पित है।"[1] इसी प्रकार श्री हरिश्चन्द्र सिंघल के नाम लिखे पत्र में वे कहते हैं-"हिन्दी सेवा को मैं सर्वाधिक पुण्य कार्य मानता हूं। - - - आपने हमलोगों को हिन्दी सेवा के मिशन में जो उल्लेखनीय सहयोग किया है वह तो सदैव स्मरणीय रहेगा।"[2] इससे प्रकट होता है कि बाबू जी का हिन्दी-प्रेम अद्वितीय एवं अनुकरणीय है।

(ग) दृष्टिकोण :

बाबू वृन्दावनदास बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न सत्पुरुष हैं। साहित्य-साधना उनके जीवन का लक्ष्य हैं। साहित्य के सम्बन्ध में उनका विचार है -

" साहित्य का साहित्यकार से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्यकार के मनोभावों की अभिव्यक्ति का नाम ही साहित्य है, स्थिति के इस सन्दर्भ में स्वयं साहित्यकार साहित्य से भी अधिक महत्वपूर्ण हैं।[3]

पत्र-साहित्य के सम्बन्ध में उनकी मान्यता है कि -

" पत्र-लेखन एक स्वान्त: सुखाय प्रक्रिया है। जब तक लेखक का मन न होगा वह कभी पत्र न लिखेगा। किसी काम को पूरा कर लेने के बाद जो प्रसन्नता होती है, वह पत्र लिखने के बाद सुलभ हो जाती है। लेख या निबन्ध लिखने में और पत्र लिखने में भेद हैं। लेख या निबन्ध लिखना समय एवं श्रम साध्य है अत: उसकी समाप्ति पर जो सुख होता है वह बड़ी देर में प्राप्त होता है जबकि पत्र लिखकर तत्काल ही वह प्राप्त हो जाता है। यही कारण है कि अनेक चिन्तनशील विद्वान् अपने भावों की अभिव्यक्ति की छटपटाहट को पत्र लेखन द्वारा शांत करते रहते हैं।"[4]

इस प्रकार बाबू वृन्दावनदास एक सफल पत्र-लेखक हैं। उन्होंने अपने पत्रों के द्वारा हिन्दी की अनेक योजनाओं को प्राणान्वित किया है। पत्र-विधा की समृद्धि में उनका योग चिर स्मरणीय रहेगा।

---

१ "बाबू वृन्दावनदास के पत्र" (१६७८), पृ० १७७ ।

२ -वही-, पृ० २२२ ।

३ -वही-, पृ० ११३ ।

४ -वही-, पृ० ४४ ।

११ - हरिवंशराय बच्चन (१९०७ ई०) :

डा० हरिवंशराय बच्चन आधुनिक हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि और सशक्त गद्यकार हैं । वे हिन्दी के उन थोड़े-से कवियों में हैं जिनका जीवन और साहित्य बहुत दूरतक समानान्तर चलता रहा है । वे एक उच्चकोटि के पत्र-लेखक और पत्र-साहित्य के मर्मज्ञ मनीषी हैं ।

बच्चन जी का पत्र-साहित्य :

आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों में आवश्यक पत्रों का तत्काल उत्तर देने में बच्चन जी का स्थान सर्वोच्च है । 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में 'साहित्यकारों की डाक' शीर्षक से प्रकाशित परिचर्चा में उन्होंने बताया है कि -"मुझे प्रतिमास सौ पत्र मिलते हैं । मैं प्राय: सभी पत्रों का उत्तर देता हूं ।"[1]

बच्चन जी अपने एक-एक मित्र को, चाहे वह उनका [redacted] हमउम्र हो या उनका प्रिय शिष्य या जिज्ञासु शोधार्थी, हर बात इतना सहेज सहेज कर विस्तारपूर्वक लिखते हैं कि आश्चर्य होता है । एक साक्षात्कार में उ उन्होंने अपने इस सिद्धांत पर प्रकाश डालते हुए कहा है -

"- - - चिट्ठियां तो ये हैं कि मैं समझता हूं एक आदमी हमारे दरवाजे पर दस्तक जब दे रहा है, तो उसके लिए भाई, दरवाजा खोल देना चाहिए । बस इतना ही मैं समझता हूं जब कहीं से कोई याद करता है तो मैंने यह प्रिंसिपल हमेशा रखा चिट्ठियों के बारे में - - -"[2]

इससे स्पष्ट है कि बच्चन जी ने अपनी सुदीर्घ साहित्य-यात्रा में सहस्रों पत्र लिखे हैं । उनके पत्रों को सर्वप्रथम पुस्तकाकार प्रकाशित करने का श्रेय डा० जीवनप्रकाश जोशी को है । डा० जोशी के संपादकत्व में सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली से 'बच्चन : पत्रों में' शीर्षक से प्रकाशित पत्र-संग्रह में बच्चन जी द्वारा डा० जोशी के नाम लिखित १०५ पत्र संकलित हैं । प्रस्तुत संग्रह में 'प्रश्नठ पत्रोत्तर' के अन्तर्गत बच्चन जी के १५ ऐसे पत्र भी प्रकाशित हैं, जिनमें उनके जीवन, सृजन और व्यक्तित्व के प्रामाणिक सूत्र प्राप्त होते हैं । इस प्रकार प्रस्तुत संग्रह अपने आकार प्रकार में हिन्दी की पहली पुस्तक

---

१ 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', ८ फरवरी, १९७०, पृ० ३३ ।

२ 'गद्यकार बच्चन' (१९७६), डा० जीवन प्रकाश जोशी, पृ० २६३ ।

ऐसी है जिसमें बच्चन जी के क्रमवार, एक ही व्यक्ति के नाम, लिखे गये इतने पत्र संचित हैं । और जिन्हें यह सोचकर कभी नहीं लिखा और भेजा गया था कि वे पुस्तक रूप में भी कभी छपेंगे । अत: इन पत्रों का महत्व साहित्य, पुस्तक और प्रकाशन की दृष्टि से होने के अतिरिक्त इस दृष्टि से भी विशेष है कि ये ऐसे पत्र हैं जिनमें कवि बच्चन गौण है, घरेलू सामाजिक सहृदय व्यक्ति-बच्चन प्रधान है ।

बच्चन जी के पत्रों का दूसरा स्वतंत्र संग्रह श्री निरंकारदेव सेवक की सम्पादकता में राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है जिसमें श्री सेवक के नाम लिखे बच्चन जी के ७० पत्र संकलित हैं । इन पत्रों में बच्चन जी के तीस से अधिक वर्षों के जीवन की अंतरंग झांकी मिलती है । ये पत्र बच्चन जी की साधनावस्था में लिखे गये हैं, अत: उनके जीवन-संघर्ष एवं अन्तर्द्वन्द्व का इनमें अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट चित्र अंकित हुआ है ।

उक्त दो पत्र-संग्रहों के अतिरिक्त बच्चन जी की षाष्टि-पूर्ति पर प्रकाशित 'बच्चन : निकट से' शीर्षक पुस्तक में डा० श्यामसुन्दर घोष के नाम लिखे बच्चन जी के कुछ पत्र प्रकाशित हुए हैं । श्री विश्वम्भर 'मानव' ने अपने नाम आये बच्चन जी के कुछ पत्र 'हिन्दुस्तानी' में प्रकाशित किये हैं । इसी प्रकार चन्द्रदेव सिंह के नाम लिखे बच्चन जी के कुछ पत्र 'बच्चन : कुछ चिट्ठियां' शीर्षक से 'माध्यम' में प्रकाशित हुए हैं । इस प्रकार बच्चन जी का प्रचुर पत्र-साहित्य प्रकाश में आ चुका है ।

पत्रों में प्रतिबिम्बित बच्चन जी का व्यक्तित्व :

बच्चन जी के बहुमुखी व्यक्तित्व के सम्बन्ध में 'बच्चन : व्यक्तित्व और कृतित्व', 'बच्चन निकट से' जैसी किताबों में खूब चर्चा हो चुकी है, तथापि उनको सही-सही और साफ-साफ समझने-जानने की जरूरत बनी रही है । इस आवश्यकता की पूर्ति उनके पत्रों से हो सकती है।

(क) जीवनी-सूत्र :

बच्चन जी की जीवनी के महत्वपूर्ण सूत्र डा० जीवनप्रकाश-जोशी द्वारा सम्पादित 'बच्चन : पत्रों में' शीर्षक संग्रह में क्रमबद्ध रूप में प्राप्त होते हैं । इस संग्रह के 'प्रश्न : पत्रोत्तर' में बच्चन जी की जाति ,

कुलपरम्परा, जन्मस्थान, परिवार, स्व० श्यामा जी से विवाह, पहली कविता, 'मधुशाला' के प्रतीक, आदि के विषय में विस्तार से जानकारी प्राप्त होती है । इस संग्रह के सम्पादक डा० जोशी ने प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक को पत्र द्वारा सूचित किया है कि -'प्रश्न: पत्रोत्तर' में जो कुछ बच्चन जी ने लिखा है वह एकदम नया है । पहले कहीं नहीं छपा । उसीका कुछ आधार लेकर उन्होंने अपना जीवन-चरित लिखा है ।[१] इस दृष्टि से इन पत्रों को बच्चन जी के आत्म-चरित की स्रोत-सामग्री कहा जा सकता है ।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

बच्चन जी के पत्रों में उनका कवि-व्यक्तित्व अपने सहज-प्रकृतरूप में प्रकट हो गया है । अत: उनके काव्य और व्यक्तित्व को सही समझने का सबसे सच्चा और अच्छा स्वस्थ साधन उनके पत्र ही हैं ।

१ - संवेदनशीलता और सहृदयता :

बच्चन जी के व्यक्तित्व के खजाने की कुंजी उनकी संवेदनशीलता है । अपनी प्रारम्भिक रचनाओं के सम्बन्ध में उन्होंने डा० जीवनप्रकाश जोशी को लिखा है :-

'- - - कवि होने के पूर्व मैं जीवन में कवि बन गया था । मेरा जीवन कुछ ऐसी अनुभूतियों से टक्करा चुका था, ~~कुछ~~ कुछ ऐसी भावनाओं से मंथित हो चुका था कि किसी प्रकार की अभिव्यक्ति उसके लिए अनिवार्य हो गई थी । - - - मैं स्वभाव से भाव प्रवण था - टू सेंसिटिव' ।[२]

बच्चन जी की धारणा है कि कविता का आनन्द ~~लेनके~~ लेनेके लिए अपनी संवेदनशीलता की सबसे बड़ी आवश्यकता है । वह न हुई तो अच्छी-से-अच्छी कविता बेकार है । वह हुई तो साधारण कविता में कुछ रस मिल जाता है ।[३]

---

१ डा० जीवनप्रकाश जोशी से ११-२-१९७७ को प्राप्त एक व्यक्तिगत पत्र से ।

२ बच्चन : पत्रों में (१९७०), पृ० ९२ ।

३ -वही- पृ० २० ।

बच्चन जी जिसको जी से चाहते हैं, उसके बारे में जहां से जो कुछ पता चले उसे जानने को उत्सुक रहते हैं और संकट के समय उसकी हर सम्भव सहायता करने के लिए तत्पर रहते हैं । श्री जीवनप्रकाश जोशी की आर्थिक चिन्ता से वे चिन्तित हो उठते हैं-

"मैं परेशान हूं और सोच नहीं पाता कि तुम्हारे लिए क्या करूं ?"[1]

"क्या किसी प्रकार की आर्थिक सहायता से तुम्हें छुटकारा मिल सकता है ? नि:संकोच लिखो ।"[2]

इससे स्पष्ट है कि बच्चन जी एक संवेदनशील और सहृदय व्यक्ति हैं ।

२ - आत्म-सम्मान और निर्भयता :

बच्चन जी के चारित्रिक विकास का प्रधान आधार यह है कि वे निर्भय आचरण करते हैं और आत्म-गौरव उनके भीतर कूट-कूट कर भरा है । १३ फरवरी, १९४१ को निरंकार देव सेवक के नाम पत्र में उन्हों ने लिखा है -

"- - - दुनिया मेरी प्रशंसा करें तो और मेरी निन्दा करें तो- मैं उसे अपने ढंगे पर समझता हूं, क्योंकि अपने ढंगे की मज़बूती का मुझे विश्वास है ।"[3]

बच्चन जी अपनी आलोचना से कभी नहीं डरते आलोचक उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में क्या कहते हैं, इसकी उन्होंने बहुत कम परवाह की है । डा० श्यामसुन्दर घोष के नाम एक पत्र में उन्होंने स्पष्ट सूचित किया है -

"मुझे इस बात की कम परवाह है कि समालोचक मेरी कविता के बारे में क्या कहते हैं ।"[4]

इसी प्रकार चन्द्रदेवसिंह को प्रेषित एक पत्र में उन्होंने यही मत प्रकट किया है-

" - - - मैंने समालोचक नामक जंतु का कभी अस्तित्व ही स्वीकार नहीं किया - चाहे वह नया हो, चाहे पुराना । कवियों ने

---

१ "बच्चन:पत्रों में" (१९७०), पृ० ५२ । २ -वही-, पृ० ३४।३."बच्चन केपत्र",पृ.१२।
४ "बच्चन:निकट से" (१९६८),पृ० २४१। ~~३ "बच्चन के पत्र" (१९७२), पृ० १२~~ ।

बहुत से समालोक बनाये हैं, पर आजतक कभी किसी समालोचक ने कोई कवि नहीं बनाया ।"[1]

इन उद्धरणों से प्रकट होता है कि बच्चन जी ने दो टूक बात कह देने की जो नीति अपना रखी है, उसके कारण लोग उनसे अप्रसन्न भी हो जाया करते हैं ।

३ - पाठकों के प्रति प्रेम :

बच्चन जी समालोचकों की परवाह नहीं करते, पर अपने पाठकों के प्रति उनके मन में अपार प्रेम है । पाठकों को वे अपने हमदम और दोस्त मानते हैं ।[2] डा० जीवन प्रकाश को लिखे २५-८-१९६१ के पत्र में वे लिखते हैं-

"मुझे अपने ऊपर समालोचना या लेख देखकर इतनी प्रसन्नता नहीं होती जितनी कभी किसी ग्रामीण पाठक का पत्र पाकर, जिसमें वह मेरी कविता से मिली किसी प्रकार की प्रेरणा स्वीकार करता है ।"[3]

इसी प्रकार एक अन्य पत्र में मिलाई में सब्जी की दुकान पर काम करने वाले एक लड़के पत्र की उन्होंने चर्चा की है । इस लड़के ने उनका "मधुकलश" पढ़ा है पर "निशा निमंत्रण" खरीदने के लिए उसके पास पैसे न होने के कारण किसी से मांगकर खाली समय में "निशा निमंत्रण" की नकल करता है । इस प्रसंग में वे कहते हैं :-

"मैं अपने ऐसे ही पाठकों से अपने यत्किंचित सृजन की सार्थकता मानता हूं । मेरी कविता पर डाक्टरेट करने वालों से नहीं ।"[4]

४ - व्यावहारिक सूझ-बूझ :

बच्चन जी एक भावुक और संवेदनशील कलाकार है, फिर भी उनमें व्यावहारिकता का अभाव नहीं है । वे बड़े समझदार व्यक्ति हैं । दुनियादारी का उन्होंने पर्याप्त अनुभव प्राप्त किया है । इसी लिए डा० जीवनप्रकाश जोशी को यह सुझाव देते हैं -

---

१ "माध्यम", सितम्बर १९६५, पृ० ४ ।

२ "साप्ताहिक हिन्दुस्तान", ८ फरवरी,१९७०, पृ० ३३ ।

३ "बच्चन :पत्रों में" (१९७०), पृ० १०२ ।

४ -वही-, पृ० ७७ । [illegible] ।

"सब अच्छे कामों का अच्छा फल देने की दुनिया के पास शक्ति-सामर्थ्य नहीं है । हमीं दुनिया के प्रति उदार बनें ।[1]

इसी प्रकार निरंकारदेव सेवक को समझाते हैं :-

"भाई, दुनिया में पैसा भी बड़ी चीज़ है । पैसे का अभाव कुछ भी करा सकता है । वैसे पैसे का अभिमान भी ।"[2]

इससे स्पष्ट होता है कि बच्चन जी जीवन के प्रति पहुंचे हुए व्यक्ति हैं । कारण यह है कि जीवन के प्रति वे कल्पनाजीवी नहीं हैं । डा० जीवन प्रकाश जोशी के शब्दों में "जीवन का 'सत्य' और रूप का राग उन्हें सदा सम्मोहक रहा है ।"[3]

५ - आस्तिकता :

आस्तिकता बच्चन जी के चरित्र की महत्वपूर्ण विशेषता है । जीवन की विषम परिस्थितियों में वे कभी निराश नहीं हुए हैं । अपने पत्रों से वे मित्रों को आशा और आस्था का सन्देश देते रहे हैं । निरंकारदेव सेवक के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए उन्होंने दिनांक १२-१-१६-५० को प्रेषित पत्र में लिखा है :-

"विश्वास रखो, अंधेरा मिटेगा और उजाला हंसेगा । संकट की घड़ियों की सबसे बड़ी संगिनी आस्था है ।"[4]

डा० जीवन प्रकाश जोशी को आस्तिकता का महत्व समझाते हुए उन्होंने लिखा है -" जीवन में सब कुछ अपने मन का ही नहीं होता । जो अपने मन का नहीं होता उसमें भी अपना कोई कल्याण समझना - आस्तिकता है - आस्तिकता का कोई मूल्य न भी हो तो बहादुरी तो है ही ।"[5]

(ग) दृष्टिकोण :

बच्चन जी के पत्रों में प्रतिबिम्बित उनके चरित्र की उपर्युक्त विशेषताओं से उनके दृष्टिकोण का स्पष्ट परिचय मिल जाता है । वे

---

१ "बच्चन : पत्रों में" ~~वही~~, पृ० ७२ ।

२ "बच्चन के पत्र" (१६७२), पृ० ५२ ।

३ "गद्यकार बच्चन" (१६७६), पृ० ५३ ।

४ "बच्चन के पत्र", ,, पृ० २० ।

५ "बच्चन : पत्रों में", पृ० ७१ ।

संघर्ष में विश्वास रखते हैं। निरंकारदेव सेवक के नाम एक पत्र में उन्होंने स्पष्ट कहा है -

"सब तरह व्यवस्थित होकर जो लिखना चाहेगा वह जिन्दगी भर इंतजार ही करेगा। संघर्ष के बीच सृजन हो सकता है- 'मैं लिखे मधु गीत मैंने हो खड़े जीवन समर में।"[1]

साहित्य के सम्बन्ध में उनकी मान्यता है -

"कलाकार की दुनियां अपनी अकेली नहीं हो सकती, उसकी दुनिया अपने से दूसरों के सम्बन्ध से शुरू होती और बनती है- साहित्य सहित से - दार्शनिक का 'साहित्य' हो सकता है, साहित्य नहीं।"[2]

इस प्रकार बच्चन जी जीवन-यथार्थ के आराधक हैं। उनके पत्र उनके काव्य से कम मूल्यवान् नहीं हैं। उनके पत्रों में उनके व्यक्ति-कवि का जीवन, व्यक्तित्व, रहस्य तथा चिन्तन-दर्शन धुनी हुई रूई की तरह बिखरा पड़ा है। पत्र-लेखन कला की दृष्टि से भी उनके पत्रों का विशिष्ट महत्व है। बात को संक्षेप में, स्पष्ट रूप से तथा प्रभावपूर्ण ढंग से कहने की कला में वे अत्यन्त कुशल हैं। उनके पत्र, उनकी कविताओं की तरह पाठकों का मन मोह लेते हैं।

साहित्यिक क्षेत्र के प्रमुख पत्र-लेखक, उनके पत्र-साहित्य तथा पत्रों मेंप्रतिबिम्बित उनके व्यक्तित्व के अनुशीलन से हम कह सकते हैं कि साहित्यिक प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति के पत्रों में उसकी सहजात प्रतिभा के स्पष्ट दर्शन होते हैं। उसकी विशिष्ट शैली, सम्प्रेषण क्षमता, अनुभूति की सत्यता और गहनता, उसकी भाषा, सभी से उसके व्यक्तित्व की पृथक् विशेषताओं का आभास मिलता है। साहित्यिकों के पत्रोंमें इन विशेषताओं को लक्षित करते हुए डा० वासुदेवशरण ने पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम एक पत्र में लिखा था :

"मेरी समझ में किसी व्यक्ति की भारी भरकम साहित्यिक कृति आंधी के समान है, उसके साहित्यिक पत्र उन झोंकों के समान हैं जो धीरे-धीरे से आते जाते रहते हैं और थोड़ी मात्रा साथ लाने पर भी सांस बनकर जीवन देते हैं। अन्न की उत्पत्ति और मेघों की वृष्टि के लिए अन्धड़ भी चाहिए, पर मन्दवायु में जो फुरहरी है उसका भी कुछ अनूठा आनन्द है।[3]

---

१ 'बच्चन के पत्र(१९७२), पृ० ९४। २ -वही-, पृ० १०४।
२ 'डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र'(१९७४), पृ० १९०।

इससे स्पष्ट है कि साहित्यिक क्षेत्र के मनीषियों के पत्र प्राणवायु बनकर समाज को जीवन देते हैं ।

(आ) साहित्येतर क्षेत्रों के प्रमुख पत्र-लेखक

साहित्यैतर क्षेत्रों के मनीषियों के पत्र-साहित्य को भुलाकर हम हिन्दी-पत्र-साहित्य का पूर्ण एवं यथार्थ मूल्यांकन नहीं कर सकते । विशेषकर साहित्यैतर क्षेत्रों की उन विभूतियों के पत्र-साहित्य को भुलाया नहीं जा सकता , जिन्होंने युगों का नेतृत्व किया था । पिछले अध्याय में हिन्दी पत्र-साहित्य के विकास की चर्चा में हम देख चुके हैं कि हिन्दी में पत्र-साहित्य की विधिवत् परम्परा का सूत्रपात स्व० महात्मा मुंशीराम द्वारा सम्पादित "ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार भाग-१" से हुआ है । इसके अतिरिक्त महात्मा गांधी, सेठ जमनालाल बजाज और आचार्य विनोबा भावे के पत्र भी पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं । इन पत्रों का ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत बड़ा महत्व है । अत: यहां हम इन विभूतियों के पत्र-साहित्य और पत्रों में प्रतिबिम्बित उनके व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त करेंगे ।

१ - महर्षि दयानन्द सरस्वती (१८२५-१८८३) :

महर्षि दयानन्द सरस्वती आधुनिक युग की महान् विभूति थे । जगद्गुरु शंकराचार्य के पश्चात् भारत ने ऐसे प्रखर तेजपुंज को प्राप्त कर वैदिक धर्म और आर्य संस्कृति की रक्षा की । स्वामी ने समाज में घुस आई कुरीतियों और अंध परम्पराओं पर कठोर प्रहार किया तथा वैदिक संस्कृति पर आधारित जीवन की स्थापना की ।

स्वामी जी का पत्र-साहित्य :

भारतीय पुनर्जागरण के आन्दोलन में धार्मिक-सामाजिक क्षेत्रों का नेतृत्व धारण करने के कारण महर्षि दयानन्द सरस्वती को स देश के विशाल जन-समुदाय के सम्पर्क में आना पड़ा । विभिन्न शहरों में आर्य-समाज की स्थापना के बाद उनका लोक-सम्पर्क और अधिक बढ़ गया । परिणामस्वरूप आर्य-समाज के मंत्रियों, पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों, [redacted]

देशी राजाओं तथा प्रजा के विभिन्न वर्गों से उनका पत्र-व्यवहार भी उत्तरोत्तर बढ़ता गया । इसी विस्तृत पत्र-व्यवहार का एक अंश उनके देहावसान के पश्चात् महात्मा मुंशीराम के संपादकत्व में "ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार भाग-१" शीर्षक से प्रकाशित हुआ ।

"ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार भाग-१" के प्रकाशन के बाद "ऋषि के लिखे एक-एक शब्द का सुरक्षित करना आवश्यक है" इस शुभ संकल्प के साथ पं० भगवद्दत्त जी ने अथक परिश्रम से खोजखोजकर स्वामी जी के पत्रों का एक स्वतंत्र संकलन "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन भाग-१" शीर्षक से प्रकाशित कराया । यह पत्र-संग्रह संवत् १९७५ अर्थात् १९१८ में मुद्रित किया गया था । इसमें आर्य जनता के नाम वक्तव्य भी प्रकाशित हुआ था जिसमें स्वामी जी के पत्रों की मूल प्रतियां भेजने की अपील की गयी थी । इस वक्तव्य का वांछित प्रभाव पड़ा और संवत्- १९७६ वि० में उक्त पत्र-संग्रह का द्वितीय भाग प्रकाशित हुआ । इन पत्र-संग्रहों के प्रकाशन के बाद भी पं० भगवद्दत्त द्वारा स्वामी जी के पत्र एकत्र करने का प्रयास बराबर जारी रहा और लगभग आठ वर्ष बाद उक्त पत्र-संग्रह के दो और भाग प्रकाश में आ गये । इस प्रकार स्वामी जी के पत्र-साहित्य को प्रकाश में लाने का सर्वाधिक श्रेय पं० भगवद्दत्त को है ।

पं० भगवद्दत्त द्वारा सम्पादित "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" के चारों भागों के प्रकाशन के पश्चात् गुरुकुल विश्व-विद्यालय, कांगड़ी से पं० चमूपति की सम्पादकता में " ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार भाग-२" शीर्षक पत्र-संग्रह प्रकाशित हुआ । इसके कुछ वर्षों के बाद स्वामी के बहुत-से पत्र पं० भगवद्दत्त को प्राप्त हुए । हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् डा० धीरेन्द्रवर्मा के संग्रह में स्वामी के अनेक महत्वपूर्ण पत्र सुरक्षित थे । इसके अतिरिक्त ठाकुर किशोरसिंह, मेवाड़ के राजाधिराज नाहरसिंह आदि के पास भी स्वामी जी के कई पत्र सुरक्षित थे । इन सभी पत्रों को पं० भगवद्दत्त द्वारा सम्पादित उक्त पत्र-संग्रह के चारों भागों में सम्मिलित कर सन् १९४५ ई० में रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर ने "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" शीर्षक से ही एक बृहद् पत्र-संग्रह प्रकाशित किया । इस संग्रह में कुल मिलाकर ५०० पत्र और विज्ञापन थे ।

इस बृहत् ग्रंथ के प्रकाशन के पश्चात् कई स्थानों से स्वामी जी के अप्रकाशित पत्र प्राप्त हुए । अतः इसके द्वितीय संस्करण में इन पत्रों को परिशिष्ट में स्थान दिया गया । यह संस्करण सन् १६५५ ई० प्रकाशित हुआ था । इसमें कुल पत्रों और विज्ञापनों की संख्या ८४४ तक पहुंच गयी है ।

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित इस बृहत् ग्रंथ में स्वामी जी के सन् १६५५ तक प्रकाशित प्रायः सभी पत्र संकलित हैं । इसमें स्व० महात्मा मुंशीराम तथा पं० चमूपति के द्वारा सम्पादित क्रमशः "ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार भाग-१ और २ " के पत्र भी समाविष्ट हैं । इसमें पत्रों के साथ पाद-टिप्पणियों में सन्दर्भ भी दिये गये हैं । इस ग्रंथ की भूमिका तथा प्रकाशकीय वक्तव्य में स्वामी जी के पत्र-व्यवहार पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है । साथ ही जिनके नाम पत्र भेजे गये हैं उनकी सूची भी दी गयी है । इसमें स्वामी जी के जीवन चरित्रों में दी गई तिथियों तथा घटनाओं को पत्रों में निर्दिष्ट तिथियों और घटनाओं के प्रकाश में देखने-परखने का प्रयास भी किया गया है । इसके अतिरिक्त स्वामी जी के ग्रंथों के लेखकों- पं० भीमसेन पं० ज्वालादत्त आदि के विषय में स्वामी जी सम्मतियां भी उसमें प्रकाशित हैं । इस प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ स्वामी जी के विशद व्यक्तित्व का प्रकाश-स्तम्भ है ।

पत्रों में प्रतिबिम्बित स्वामी जी का व्यक्तित्व :-

पुनर्जागरणकाल में, महर्षि दयानन्द सरस्वती की अतुलनीय प्रतिभा, प्रचण्ड पांडित्य और निर्भीक महाप्राण अद्वितीय व्यक्तित्व के कारण, प्रायः सम्पूर्ण उत्तरभारत में वैदिक धर्म की लहर दौड़ आई थी । उनके अद्वितीय व्यक्तित्व की झांकी उनके पत्रों में हमें बराबर मिलती है ।

(क) जीवनी-सूत्र :

स्वामी जी के पत्रों में उनकी जीवनी के क्रमबद्ध सूत्र नहीं मिलते । उनके जीवन-कार्य के कुछ संकेत ही प्राप्त होते हैं । जैसे, आर्य-समाज की स्थापना के सम्बन्ध में उन्होंने अहमदाबाद के जज गोपालराव हरि देशमुख को लिखा है-

" - - - आगे मुम्बई में चैत्र शुद्ध ५ शनिवार के दिन संध्या

के साढ़े पांच बजते आर्य-समाज का आनन्दपूर्वक आरम्भ हुआ ।- - -"[1]

यह स्वामी जी के जीवन की महत्वपूर्ण घटना है । इस पत्र का ऐतिहासिक महत्त्व है ।

इसी प्रकार पं० कालूराम को लिखित एक पत्र में हमें आर्य-समाज की प्रगति का विवरण प्राप्त होता है । यथा-"- - - रावल पिण्डी में आर्यसमाज हो गया । इस स्थान (जेहलम) में भी होने की आशा है । पंजाब में बहुत ठिकाने समाज बन गये हैं । वेद धर्म की बड़ी उन्नति है ।[2]

इस प्रकार पत्रों में स्वामी जी की विभिन्न स्थलों की यात्रा, पंडितों से शास्त्रार्थ, आर्य-समाज की प्रगति आदि का विस्तार से विवरण मिलता है ।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

स्वामी जी के ग्रंथों को पढ़कर उनकी विद्वता, बुद्धिमत्ता, वेद-निष्ठा, त्याग, तपस्या आदि का विशद परिचय मिल जाता है, किन्तु उनके चरित्र के कुछ ऐसे पहलू भी हैं जिन्हें हम उनके पत्रों के द्वारा ही जान सकते हैं । यहां कुछ ऐसे पहलुओं पर प्रकाश डाला जाता है ।

१ - निर्भीकता और स्पष्टवादिता :

निर्भीकता और स्पष्टवादिता स्वामी के स्वभाव की महत्वपूर्ण विशेषताएं थीं । सच्ची बात कहने में वे किसी से नहीं डरते थे । लाला-कालीचरण दास द्वारा आर्यसमाज के एक अखबार में नाटक का विषय छापने की बात को अनुचित ठहराते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा था :-

"लाला कालीचरणदास जी, आनन्दित रहो ।

विदित हो कि तुम आर्यसमाज के पत्र में नाटक का विषय मत छापो । यह अनुचित बात है । यह आर्य्य समाज है । भडुआ समाज नहीं । - - - -"[3]

---

१ "ऋषि दयानंद सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१६५५), पृ० २५ ।

२ --वही-, पृ० ३६६-६७ +

२ "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१६५५), पृ० ७६ ।

३ -वही-, पृ० ३६६-६७ ।

इसी प्रकार जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह के नाम ८ सितम्बर १८८३ को भेजे पत्र में उन्होंने महाराजा के गुणों की प्रशंसा के साथ उनके दोषों की बड़ी निर्भयता से निन्दा भी की थी । उन्होंने लिखा था :

"एक वेश्या जो कि नन्नी कहलाती है उससे प्रेम, उसका अधिक संग और अनेक पत्नियों से न्यून प्रेम रखना आप जैसे महाराजों को सर्वथा अयोग्य है ।"[1]

स्वामी जी की, अपनी स्पष्टवादिता के कारण ही ~~उन्हें अपने~~ प्राण गंवाने पड़े ।

२ - व्यवहार-कुशलता :

स्वामी के ग्रंथों को पढ़ने से यही जाना जाता है कि वे वेद-शास्त्रों के उद्‌भट विद्वान्, त्यागी, तपस्वी और निरीह संन्यासी थे, परंतु जब हम उनके पत्र पढ़ते हैं, तो यह भी ज्ञात होता है कि वे एक कुशल व्यवस्थापक और प्रबन्धक भी थे । पाई-पाई पर उनका ध्यान रहता था । हिसाब-किताब सम्बन्धी रसीदें लेने, प्राप्तिकर्ता से नियमानुसार हस्ताक्षर कराने, अच्छे-बुरे कर्मचारी को परखने आदि की भी उन्हें खूब जानकारी रहती थी । जैसे, स्वामी ईश्वरानन्द को कुछ महत्वपूर्ण सूचनाएं देते हुए उन्होंने लिखा है-

"स्वामी ईश्वरानन्द जी, आनन्दित रहो ।

(१) सब यंत्रालय के पदार्थ और नौकरों पर दृष्टि रखना कि नियमानुसार सब काम होते हैं वा नहीं , (२) जब कभी जिस किसीका व्यतिक्रम देखें तो जो शिक्षा करने से सुधार सकता हो तो वहीं सुधार देना, न मानें तो हम को लिखना । - - - "[2]

इससे स्पष्ट है कि स्वामी जी में व्यावहारिक बुद्धि भी अच्छी थी

३ - स्वदेश-भक्ति :

स्वामी जी सच्चे देशभक्त थे । देश के गौरव और उत्थान की उनको सतत चिन्ता रहा करती थी । उन्होंने अपने शिष्य प्रसिद्ध क्रांतिकारी विद्वान् श्याम जी कृष्ण वर्मा को विदेश भेजते समय जो सूचनाएं दी

---

१. ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार भाग-२ (१९९२ वि०) पृ० ९५

२. ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार भाग-१ (१९१०), पृ० १७-१८ ।

थीं, उनमें उनकी स्वदेश-भक्ति स्पष्टरूपेण झलकती है । देखिए-

"- - - अब आपको उचित है कि जब वहां जावें, जो आपने अध्ययन किया है, उसीमें वार्तालाप करें और कह देवें कि मैं कुल वेद-शास्त्र नहीं पढ़ा, किन्तु मैं तो आर्यावर्त देश का छोटा विद्यार्थी हूं और कोई बात का काम ऐसा न हो कि जिससे अपने देश का ह्रास होवें - - -"[1]

यह पत्र स्वामी जी के स्वदेश-प्रेम का ज्वलन्त प्रमाण है ।

४ - हिन्दी के प्रति अनुराग और उसके प्रचार में योगदान :

स्वामी जी की मातृभाषा गुजराती थी । संस्कृत पर उनका असाधारण प्रभुत्व था । परन्तु हिन्दी के प्रति उनके मन में असीम अनुराग था । हिन्दी की सम्पर्कक्षमता देखकर उन्होंने उसे "आर्यभाषा" की गरिमायुक्त संज्ञा प्रदान की थी । लाहौर के आर्य समाज के मंत्री भाई जवाहरसिंह ने उनको टूटी-फूटी हिन्दी में एक लम्बी चिट्ठी लिखी थी जिसके उत्तर में स्वामी जी ने उनको प्रोत्साहित करते हुए लिखा था -

"- - - जो तुमने इतनी बड़ी चिट्ठी आर्यभाषा में लिखी, यही हमने तुम्हारी शुद्धी जानी ।"[2]

स्वामी जी अपना बहुत-सा पत्र-व्यवहार दूसरों को बोलकर लिखवाते अथवा लिखने को कह दिया करते थे । अतः उनके पत्रों में भाषाकीय अशुद्धियां प्रायः लेखक के प्रमाद का परिणाम ही हैं । यद्यपि गुजराती और संस्कृत पर उनकी जितनी पकड़ थी, उतनी हिन्दी पर शायद नहीं थी, तथापि हिन्दी के प्रति अनुरक्ति के कारण वे अपने विचार उसमें अ अच्छी तरह व्यक्त कर सकते थे । उन्होंने हिन्दी को राजभाषा का स्थान दिलाने के लिए सरकार द्वारा नियुक्त हंटर कमीशन के पास हिन्दी के पक्ष में स्थान-स्थान से स्मरण-पत्र भिजवाये थे । इस सम्बन्ध में लाला कालीचरण को प्रेषित १४ अगस्त १८८२ ई० के पत्र का निम्नांकित अंश स्पष्टहै-

"- - - आपलोग भी जहां तक हो सके गोरक्षार्थ सही और आर्यभाषा के राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ शीघ्र प्रयत्न कीजिए ।"[3]

१ "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ० ६२ ।
२ "ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार भाग-१" (१९१०), पृ० १२५ ।
३ "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ० ३५४ ।

इससे स्पष्ट है कि हिन्दी की उन्नति और उसके प्रचार-प्रसार में स्वामी जी का योग महत्वपूर्ण है । इस सन्दर्भ में डा० विजयेन्द्र स्नातक के इस कथन का स्मरण हो जाता है कि -" हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार में आर्य समाज का ~~यथेष्ट~~ योगदान सर्वविदित है । आर्य-समाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आज से एक शताब्दी पूर्व अपना लेखन हिन्दी भाषा में प्रारंभ किया था । स्वामी जी हिन्दी भाषा को आर्यभाषा कहकर पुकारते थे ।"[1]

(ग) दृष्टिकोण :

स्वामी जी को वेदों के प्रति अपार आस्था थी । ~~[illegible]~~ वे भारतीय समाज की समस्त विकृतियों को हटाकर उसे वैदिक धर्म के अनुसार ~~क~~ ढालना चाहते थे । "वेदों की ओर लौट चलो" उनका मुख्य नारा था । "भारतमित्र" के सम्पादक के पास भेजे गये पत्र में उन्होंने वेद-विषयक अपनी सम्मति प्रकट करते हुए लिखा था :

" - - - मैं ईश्वर नहीं, किन्तु ईश्वर का उपासक हूं । परन्तु वेद मनुष्यों के हितार्थ परमात्मा ने प्रकाशित किये हैं । इस अभिप्राय से कि यहां तक मनुष्य की विद्या और बुद्धि पहुंच सकेगी और इतने तक कार्य मनुष्य कर सकेंगे । इसलिए यावत् मेरी बुद्धि और विद्या है तावत् निष्पक्षपात होकर वेदों का अर्थ प्रकाशित करता हूं ।"[2]

इससे स्पष्ट है कि स्वामी जी की विचारधारा वैदिक धर्म के अनुकूल थी । वे वैदिक संस्कृति के अनुसार भारतीय समाज का निर्माण करना चाहते थे ।

स्वामीजी के पत्र उनके सरल और निष्कपट व्यक्तित्व के ज्वलन्त उदाहरण हैं । उनकी पत्र-लेखन की शैली अपने ढंग की अनूठी है । उनके हिन्दी पत्रों में "स्वस्तिश्री" की परम्परागत शैली के दर्शन हीं होते हैं । उनके अधिकतर पत्रों में सम्बोध्य व्यक्ति के नाम का उल्लेख हुआ है और अभिवादन के रूप में "आनन्दित रहो", प्रसन्न रहो" आदि शब्द प्रयुक्त हैं ।

---

१ "द्विवेदी-युगीन काव्य पर आर्यसमाज का प्रभाव" (१६७३), भूमिका ।

२ "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार भाग-१" (१६१०), पृ० ६८-६६ ।

संस्कृत के प्रकांड पंडित होते हुए भी उन्होंने अपने पत्रों में संस्कृत की परम्परागत शैली का प्रयोग नहीं किया है । अनौपचारिकता, सरलता, स्पष्टता, संक्षिप्तता आदि उनके पत्रों की प्रमुख विशेषताएं हैं । अपने पत्रों से उन्होंने अनेक व्यक्तियों को प्रेरित प्रोत्साहित किया और हिन्दी हिन्दू-संस्कृति तथा हिन्दुस्तान के हितार्थ भरसक प्रयास किया ।

इस प्रकार ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र उनके दिव्य व्यक्तित्व के दर्पण और भारतीय पुनर्जागरण के धार्मिक सामाजिक इतिहास के बहुमूल्य दस्तावेज़ हैं ।

२ - महात्मा गांधी (१८६९-१९४८) :

महात्मा गांधी एक युगपुरुष थे । नवीन भारत के ~~निर्माता~~ निर्माताओं में उनका नाम सबसे पहले आता है । अपने मौलिक चिन्तन और अनुभव-सिद्ध प्रयोगों द्वारा उन्होंने लाखों व्यक्तियों का मार्ग-दर्शन किया । जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें उन्होंने नई राह न दिखलाई हो । उनका धर्म, उनकी राजनीति से अलग नहीं था । उनके चिन्तन में सम्पूर्ण मानव-जीवन की उज्जवलता का प्रतिनिधित्व होता है । उनके पत्रों में उनका व्यक्तित्व एवं जीवन-दर्शन पूर्णतः प्रतिबिम्बित हुआ है।

महात्मा जी का पत्र-साहित्य :

महात्मा गांधी विश्व के महान् पत्र-लेखकों में अग्रणी हैं । श्री नरहरि परीख ने उनके पत्र-साहित्य के सम्बन्ध में लिखा है-" पत्र-लेखकों में बापू जी की बराबरी करनेवाला शायद ही कोई मिलेगा । उन्होंने अपने पत्रों द्वारा कितनों ही को जीवन में प्रेरणा दी है, कितनों ही की शंकाओं का समाधान किया है, दिल की गुत्थियां सुलझाई हैं और कितने ही परेशान और दुःखी लोगों को आश्वासन दिया है । उनसे प्रेरणा और मदद चाहनेवालों की मंडली इतनी विस्तृत थी कि रोज़ तीन-चार घण्टे और कभी-कभी तो इससे भी अधिक समय तक पत्र लिखने में लगाने पर भी वे अपना सारा पत्र-व्यवहार नहीं निपटा पाते थे । इसलिए उन्हें काफी विवेक से काम लेना पड़ता था । कुछ पत्र खुद जवाब देने के लिए रखकर बाकी के "इन्हें यह लिख देना" आदि सूचनाएं देकर मंत्रियों को सौंप देते थे ।[१]"

१ "बापू के पत्र : सरदार वल्लभभाई पटेल के नाम" (१९५२) संपादिका - मणिबहन पटेल, भूमिका, पृ० ६ ।

इस प्रकार महात्माजी ने अपने जीवन में असंख्य लोगों के पत्र पाये और स्वयं सहस्रों पत्र लिखे।

महात्मा गांधी के पत्रों का पुस्तकाकार प्रकाशन सर्वप्रथम सम्भवत: संवत् १६७६ में हुआ था । पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी द्वारा सम्पादित "महात्मा गांधी के निजी पत्र" शीर्षक पुस्तक महात्माजी के पत्रों का प्रथम संग्रह है । इसमें महात्माजी द्वारा आत्मीजनों को लिखे गये ८१ पत्र संकलित हैं । ये पत्र उस समय लिखे गये हैं जब महात्माजी दक्षिण आफ्रिका में अहिंसक आन्दोलन चला रहे थे । भारत के स्वाधीनता-संग्राम में उनकी सफलता का रहस्य इन पत्रों में मिलता है ।

सन् १६५० ई० में नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद की ओर से "बापू के पत्र" शीर्षक पुस्तक-माला का प्रकाशन आरम्भ हुआ और समय-समय अनेक पत्र-संग्रह प्रकाश में आये-जैसे, "बापू के पत्र : आश्रम की बहनों के नाम" (१६५०), "बापू के पत्र : मीरा के नाम" (१६५१), "बापू के पत्र : सरदार वल्लभभाई पटेल के नाम" (१६५२), "बापू के पत्र: कुसुम-बहन देसाई के नाम" (१६५६), "बापू के पत्र : मणिबहन पटेल के नाम" (१६६०), "बापू के पत्र : कुमारी प्रेमाबहन कंटक के नाम" (१६६१) आदि । इन पत्रसंग्रहों में संकलित अधिकतर पत्र गुजराती और अंग्रेजी में ही लिखे गये हैं ।

बजाज परिवार के नाम हिन्दी में लिखे गये महात्माजी के पत्र "पांचवें पुत्र को बापू के आशीर्वाद" तथा "बापू के पत्र-बजाज परिवार के नाम" शीर्षक पुस्तकों में संकलित हैं । इन दोनों पत्र-संग्रहों का सम्पादन आचार्य काका कालेलकर ने किया है । महात्मा जी ने सेठ जमनालाल बजाज को अपने पांचवें पुत्र के तौर पर स्वीकार किया था । महात्मा जी ने न केवल सेठ जी की, वरन् उनके सारे परिवार की, व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक चिन्ता अपने सिरपर ले ली थी । "बापू के पत्र : बजाज परिवार के नाम" शीर्षक पत्र-संग्रह के दो खण्ड हैं । प्रथमभाग में बापू और सेठ जी का पत्र-व्यवहार संकलित है और दूसरे भाग में बापू द्वारा बजाज परिवार के सदस्यों-राधाकृष्ण बजाज, अनसूया बजाज, कमलनयन बजाज आदि- को लिखे गये स्नेहपूर्ण पत्र प्रकाशित हैं ।

इन पत्र-संग्रहों के अतिरिक्त पं० वियोगी हरिद्वारा संपादित " बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र" में महात्मा जी के कुछ प्रेरक पत्रों का संकलन किया गया है । पं० जवाहरलाल नहेरू के नाम लिखे गये महात्माजी के ६ हिन्दी-पत्र " कुछ पुरानी चिट्ठियां " में देखे जा सकते हैं । हिन्दुस्तानी के प्रश्न पर राजर्षि टंडन के साथ हुआ महात्माजी का ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार पं० गोपालप्रसाद व्यास द्वारा सम्पादित" गांधी हिन्दी दर्शन" में संकलित है । इस प्रकार महात्मा जी का प्रचुर पत्र-साहित्य प्रकाशित हो चुका है ।

पत्रों में प्रतिबिम्बित महात्मा जी का व्यक्तित्व :

महात्मा गांधी के व्यक्तित्व के अनेक पक्ष हैं । वे केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं थे, अपितु समाजसुधारक और कर्मयोगी भी थे । उनके पत्रों में राजनीति, समाज-सेवा और आध्यात्मिक चिन्तन की त्रिवेणी प्रवाहित है ।

(क) जीवनी-सूत्र :

महात्मा जी के पत्रों के आधार पर हम उनके जीवन के तीन अंगों का परिचय प्राप्त करते हैं- एक राजनैतिक जीवन, जिसमें प्रधानतया सत्याग्रह की आत्मशक्ति और बलिदान की दिव्यशक्ति प्रकट होती है, दूसरा रचनात्मक जीवन, जिसके जरिये वे सिंह-जैसे एक गिरे हुए, विशृंखलित, निराश और अंध राष्ट्र को नवजीवन की दीक्षा देते रहे और मानो धीरे-धीरे उसकी सब हड्डियां इकट्ठी करके उसमें प्राण फूंकते रहे और तीसरा व्यावहारिक जीवन जिसके द्वारा वे असंख्य व्यक्तियों के जीवन में, उनके व्यक्तिगत सवालों में, पारिवारिक सम्बन्धों में और व्यवहार की अनेक बातों में पिता और माता के हृदय से प्रवेश करते हैं ।[१] पं० जवाहरलाल नहेरू, सरदारवल्लभभाई पटेल आदि राजनैतिक नेताओं के नाम लिखे पत्रों में उनके राजनैतिक जीवन का, सेठ जमनालाल बजाज, पं० वियोगी हरि आदि समाज-सेवियों के नाम लिखे पत्रों में उनके रचनात्मक जीवन का तथा बजाज

---

१ " आचार्य काका कालेलकर :" बापू के पत्र : बजाज परिवार के नाम" (१९६६), सम्पादकीय, पृ० ८ ।

परिवार के सदस्यों के नाम लिखे पत्रों में उनके व्यावहारिक जीवन का विशद परिचय प्राप्त होता है । इन पत्रों में उनके जीवन की अनेक घटनाओं के सन्दर्भ-सूत्र भी उपलब्ध होते हैं ।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

महात्मा गांधी एक लोकोत्तर पुरुष थे । उनका हृदय पुष्प से भी कोमल और वज्र से भी कठोर था । उनके पत्रों में उनके चरित्र के अनेक पक्ष उद्घाटित हुए हैं । यहां हम कुछ प्रमुख पक्षों पर ही दृष्टिपात करेंगे ।

१ - सत्यवादिता :

महात्मा जी सत्य की साकार मूर्ति थे । सत्य की उपासना उनके जीवन का लक्ष्य था । सच्ची बात कहने में उन्होंने कभी हिचकिचाहट का अनुभव नहीं किया । उनकी सत्यवादिता का प्रमाण हमें पं०- जवाहरलाल के नाम १५ अप्रैल, १९४२ को लिखे पत्र में मिलता है । इस पत्र का प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है -

चि० जवाहरलाल ,

प्रोफेसर यहां आये हैं । उनसे सब सुना । तुम्हारा प्रेस इन्टरव्यूह भी सुना । मैं देखता हूं कि हमारे विचारों में तो भेद था ही, लेकिन अब अमल में हो रहा है । इस हालत में वल्लभभाई वगैरा क्या करें ? तुम्हारी नीति को स्वीकार किया जाय तो कमिटी जैसी आज है ऐसी नहीं रहनी चाहिए ।

ज्यों ज्यों मैं सोचता हूं, मुझे लगता है कि तुम गलती कर रहे हो । अमरीकी लश्कर, चीनी लश्कर हिन्दुस्तान में आवे और हम गुरिल्ला लड़ाई में पड़ें, इसमें मैं कुछ भी भला नहीं पाता हूं ।"[१]

२ - संयम-नियम :

महात्मा जी की सफलता का रहस्य उनके संयमित-नियमित जीवन में है । स्वेच्छाचार और स्वच्छन्दता को उनके जीवन में कोई स्थान

---

१ "कुछ पुरानी चिट्ठियां" (१९६७), पृ० ६४२ ।

नहीं था । अपने एक लेख के सन्दर्भ में उन्होंने मदालसा नारायण को लिखा था -

"- - - मेरे लेख में स्वछन्दता को स्थान होता ही नहीं । मेरा जीवन संयम के लिए है । - - - -"[1]

इसी प्रकार कमलनयन बजाज को नियमित जीवन की प्रेरणा देते हुए वे लिखते हैं -

"- - - आलस्य छोड़ने के लिए सबसे अच्छी बात यह है कि नित्य के नियम बना लेना और उस पर कायम रहना ।"[2]

३ - अविचल दृढ़ता :

महात्मा जी के विचार और निर्णय अचल होते थे । उनकी संकल्प शक्ति प्रबल थी । एकबार विचारपूर्वक जो कार्य वे हाथ धरते, उससे पीछे हठ करना प्राय: असम्भव था । अपने विचारों की दृढ़ता के बारे में सेठ जमनालाल के नाम ११-६-१६३८ को प्रेषित पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिख दिया था -

" विचारपूर्वक और धर्म समझकर जो कदम मैं उठाऊं, उस पर दृढ़ रहने की शक्ति मैं खो बैठा हूं, ऐसा मुझे नहीं लगता ।"[3]

महात्मा जी की अविचल दृढ़ता का सबसे सुन्दर उदाहरण हमें उनके टंडन जी के साथ हिन्दुस्तानी के प्रश्न पर हुए ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार में मिलता है । वे हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाने के आग्रही थे और टंडन जी हिन्दी को । महात्मा जी के हिन्दी-प्रेम से प्रभावित होकर ही टंडन जी उनको सम्मेलन में लाये थे, परन्तु वे अपने लम्बे पत्रों से महात्मा जी के विचारों में परिवर्तन नहीं ला सके । महात्मा जी अपने निर्णय पर अटल रहे और सम्मेलन की स्थायी समिति को त्याग-पत्र भेजते हुए उन्होंने टंडन जी को लिखा :

---

१ "बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम" (१६६६), पृ० २५५ ।
२ -वही-, पृ० २२१ ।
३ "बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम" (१६६६) पृ० १५५ ।

"- - - मैं तो इतना ही कहूंगा कि जहां तक हो सका मैं आपके प्रेम के आधीन रहा हूं । अब समय आया है कि वही प्रेम मुझे आपसे वियोग कराएगा । मैं अपनी बात नहीं समझा सका हूं । यही पत्र आप सम्मेलन की स्थायी समिति के पास रखें ।"[1]

इससे स्पष्ट है महात्मा जी दृढ़ता की मूर्ति थे ।

४ - विनम्रता :

महात्माजी अपने सिद्धान्त-पालन में कठोर होते हुए भी हृदय से विनम्र थे । अपने दोष वे नम्रतापूर्वक स्वीकार कर लेते थे । एक बार उन्होंने सेठ जमनालाल के उत्तर की प्रतीक्षा किये व बिना कमिटी से आग्रह किया कि वर्धा में मीटिंग रखी जाय । इस सम्बन्ध में अपनी भूल स्वीकार करते हुए उन्होंने सेठ जी को लिखा है-

चि० जमनालाल ,

मैं कैसा बेवकूफ और स्वार्थी हूं । तुम्हारी तबीअत का कुछ खयाल नहीं किया । सिर्फ मेरा ही किया । तुम्हारी इजाज़त मांगी और मैंने राह भी न देखी । और कमिटी से आग्रह किया कि मीटिंग वर्धा में रखी जाय । उसमें मैंने हिंसा की और वह मामूली नहीं । मित्रता का, तुम्हारी उदारता का दुरूपयोग किया । तुम्हारे पास माफी मांगने से प्रायश्चित नहीं होता है । सच्चा प्रायश्चित तो वही होगा , जिसे मैंने तुम्हारे प्रति जो निर्दयता बताई है, ऐसी कभी दुबारा तुम्हारे प्रति या अन्य कोई के प्रति न बताऊं ।"[2]

यह पत्र महात्माजी की विनम्रता का उत्तम नमूना है ।

(ग) दृष्टिकोण :

महात्मा जी "सादा जीवन और ~~अ~~ उच्च विचार" (*Simple living and high thinking*) वाले सिद्धांत के पक्षपाती थे । उनके अनेक पत्रों में हमें इस सिद्धांत के दर्शन होते हैं । उदाहरण के लिए रामकृष्ण बजाज के नाम लिखे उनके २३-३-१९४५ के पत्र का अधोलिखित अंश देखा जा सकता है

---

१ "गांधी-हिन्दी दर्शन," (प्र०सं०), पृ० २३१ ।

२ "बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम" (१९६६), पृ० २०१ ।

" - - - हमारा तो धर्म है न कि हम इच्छापूर्वक कम से कम खर्च करें और जीवन उच्चतम रखें ।"[1]

इसी प्रकार वे मानते थे हमें हमेशा दूसरों के गुण देखना चाहिए, दोष नहीं । यदि दोष देखना है तो स्वयं के ही देखना चाहिए । मदालसा नारायण को एक पत्र द्वारा उन्होंने यही दृष्टिकोण प्रकट किया है -

" - - - तुम अपने दोष और दूसरों के गुण ही देखोगी तो सपाटे से आगे बढ़ोगी, और सुख अनुभव करोगी ।"[2] यही बात बहुत वर्ष पहले अपने पुत्र चि० मणिलाल को चैत्र कृ० संवत् १९६५ वि० को लिखे पत्र[3] में कही थी -" दोष की अपेक्षा मनुष्य के गुणों की ओर देखना चाहिए"।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा जी के पत्रों में उनका व्यक्तित्व पूरी तरह झलकता है । उनके पत्र छोटे पर विचारोत्तेजक होते थे । बात को संक्षेप में किन्तु प्रभावक ढंग से कहने की कला में वे बहुत कुशल थे । उनके पत्र सहज सत्य की अभिव्यक्ति के उत्तम उदाहरण हैं । सरलता और निष्कपटता उनके पत्रों के प्रधान गुण हैं । उनका संत स्वभाव उनके पत्रों में पूर्णत: प्रकट हुआ है । पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी ने उनके पत्र-साहित्य के सम्बन्ध में बहुत उपयुक्त कहा है -

"हों संत जिस पथ के पथिक पावन परम वह पन्थ है ।
आचरण ही उनका जगत् में पथ-प्रदर्शक ग्रंथ हैं ।।"[4]

३ - सेठ जमनालाल बजाज (१८८९-१९४२):

हमारे देश के स्वाधीनता-संग्राम के साथ जिन व्यक्तियों के नाम गहराई से जुड़े हुए हैं, उनमें सेठ जमनालाल बजाज का नाम उनकी सेवा-साधना और व्यापक जन-सम्पर्क की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है ।

---

१ " बापू के पत्र : बजाज परिवार के नाम",पृ०२९८
२ - वही, पृ० २५१ ।
३ "महात्मा गांधी के निजी पत्र" (सं० १९७९वि०), पत्र क्रमांक-१८ ।
४ - वही, पृ० १ ।

वैसे तो प्रारम्भ से ही उनके जीवन में सेवा-भाव विद्यमान था, किन्तु महात्मा गांधी के सम्पर्क में आने के बाद उनकी प्रवृत्तियों तथा सेवाओं का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया । महात्माजी ने उनको अपने पांचवें पुत्र के तौर पर स्वीकार किया । राष्ट्र के अभ्युदय से सम्बन्धित महात्मा जी की सभी प्रवृत्तियों में उन्होंने सक्रिय भाग लिया । उनकी एक ही इच्छा थी - हमारा देश स्वाधीन हो और ऊपर उठे ।

सेठ जी का पत्र-साहित्य :

सेठ जमनालाल बजाज का जन-सम्पर्क बड़ा ही व्यापक था । उनका पत्र-व्यवहार देश के कोने-कोने से और हर तरह के व्यक्तियों से था । श्री जयप्रकाश नारायण के शब्दों में "उनके साथ का पत्र-व्यवहार कार्यकर्ताओं के लिए एक प्रकार का चिट्ठी-पत्री द्वारा शिक्षण (Correspondence course) होता था । हर बात के ऊपर-वह छोटी ही क्यों न हो - वह बारीकी से विचार करके उत्तर देते थे ।"[1]

हिन्दी में पुस्तकाकार प्रकाशित पत्र-साहित्य में सेठ जी से सम्बन्धित पत्र-संग्रहों की संख्या सबसे अधिक है । उनके सुपुत्र श्री रामकृष्ण बजाज के सम्पादकत्व में सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली की ओर से उनसे सम्बन्धित पत्रों के आठ भाग प्रकाशित हो चुके हैं । इसके अतिरिक्त आचार्य काका कालेलकर की संपादकता में प्रकाशित "पांचवें पुत्र को बापू के आशीर्वाद" तथा "बापू के पत्र : बजाज परिवार के नाम" शीर्षक पत्र-संग्रहों में भी उनके पत्र संकलित हैं । इनमें द्वितीय पत्र-संग्रह प्रथम पत्र-संग्रह का संक्षिप्त संस्करण ही है । प्रथम संग्रह में लगभग पांच-छह सौ पत्र संकलित हैं । इन पत्रों के सम्बन्ध में सम्पादक महोदय ने लिखा है-" इन पांच-छह सौ पत्रों को पढ़ते और उनमें अवगाहन करते ऐसा अनुभव होता है, मानो हम पवित्र गंगा जी के प्रवाह में स्नान और पान कर रहे हैं ।"[2]

सस्ता-साहित्य मंडल, नई दिल्ली से सेठजी से सम्बन्धित जो पत्र-साहित्य आठ भागों में प्रकाशित हुआ है, उसका संक्षिप्त विवरण-

----

१ "पत्रव्यवहार-भाग-३"(१९६०), भूमिका, पृ० ३ ।

२ "पांचवें पुत्र को बापू के आशीर्वाद"(१९५३), सम्पादक का वक्तव्य, पृ० ११ ।

इस प्रकार है :-

(१) पत्र-व्यवहार भाग-१- देश के राजनैतिक नेताओं से ।
(२) पत्र-व्यवहार भाग-२- देशी रियासतों के कार्यकर्ताओं से ।
(३) पत्र-व्यवहार भाग-३- रचनात्मक कार्यकर्ताओं से ।
(४) पत्र-व्यवहार भाग-४- अपनी पत्नी जानकी देवी बजाज से।
(५) पत्र-व्यवहार भाग-५- अपने परिवारवालों से ।
(६) पत्र-व्यवहार भाग-६- राज्याधिकारियों से ।
(७) पत्र-व्यवहार भाग-७- समाज-सेवियों एवं व्यापारी वर्गसे।
(८) पत्र-व्यवहार भाग-८- राजनैतिक व्यक्तियों व समाज-सेवियों से ।

'पत्र-व्यवहार' के प्रथम भाग में राजनैतिक नेताओं से हुए सेठजी के पत्र-व्यवहार को प्रादेशिक क्रम से प्रस्तुत किया गया है । जैसे-उत्तर प्रदेश, दिल्ली, पंजाब, बंगाल, बम्बई, जयपुर आदि । इस पुस्तक में २७६ पत्र संकलित हैं । इसमें सेठजी के पत्रों की संख्या कम और राजनैतिक नेताओं के पत्रों की संख्या अधिक है । ये पत्र सन् १६२५ से १६४२ ई० के बीच की अवधि में लिखे गये हैं । जिन नेताओं ने सेठ जी को पत्र लिखे हैं उनमें - आचार्य कृपलानी, पुरुषोत्तमदास टंडन, आचार्य नरेन्द्र देव, जवाहरलाल नेहरू, मोतीलाल नेहरू, गोविन्द वल्लभ पन्त, मदन मोहन मालवीय, गणेशशंकर विद्यार्थी, लाला लजपत राय, मौलाना आज़ाद, सुभाषचन्द्र-बोस आदि के नाम उल्लेख्य हैं । इन नेताओं ने देश की विभिन्न घटनाओं, समस्याओं और गतिविधियों के सम्बन्ध में सेठ से विचार-विमर्श किया है । इस प्रकार इस पत्र-संग्रह में स्वाधीनता-संग्राम के अनेक सन्दर्भ-सूत्र प्राप्त होते हैं ।

'पत्र-व्यवहार' के द्वितीयभाग में अजमेर, मध्य भारत, राजस्थान, सौराष्ट्र, हैदराबाद आदि की देशी रियासतों के कार्यकर्ताओं से हुआ सेठजी का पत्र-व्यवहार संकलित है । इसमें १६६ पत्रों का संकलन है । चूंकि सेठ जी राजस्थान के निवासी थे, इसलिए हरिभाऊ उपाध्याय, हीरालाल शास्त्री, मणिलाल वर्मा आदि राजस्थानी कार्यकर्ताओं के पत्रों की संख्या इसमें अधिक है । इस संग्रह के पत्रों को पढ़ने से पता चलता है

कि भारत की आज़ादी के इतिहास में देशी रियासतों के संघर्ष की कहानी अपना विशेष महत्व रखती है ।

"पत्र-व्यवहार" के तृतीय भाग में विभिन्न क्षेत्रों के ७२ रचनात्मक कार्यकर्ताओं के साथ हुआ सेठ जी का पत्र-व्यवहार संकलित है । इसमें प्रकाशित कुल पत्रों की संख्या २२२ है । यहाँ "रचनात्मक" शब्द कुछ व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि इसमें सर जगदीशचन्द्र बसु के पत्र भी मिलते हैं। कुछ प्रमुख रचनात्मक कार्यकर्ताओं के नाम हैं- सर्व श्री अमरनाथ झा , राजकुमारी अमृतकुंवर, स्वामी आनन्द, फादर एल्विन, काका कालेलकर, किशोरलाल मशरूवाला, चतुरसेन वैद्य, प्रभावती,जयप्रकाश नारायण , डा० ज़ाकिर हुसैन, बनारसीदास चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, वियोगीहरि, आदि । इन पत्रों से गांधी-युग की अनेक नयी घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है

पत्र-व्यवहार का चतुर्थभाग, प्रथम तीन भागों से एकदम भिन्न प्रकार का है । इसमें सेठ जी और उनकी पत्नी जानकी देवी बजाज के बीच हुआ पत्र-व्यवहार संकलित है । यह पत्र-व्यवहार सन् १६११ ई० से प्रारम्भ होकर सन् १६४१ ई० तक चलता है । जानकी देवी द्वारा प्रारम्भिक काल में लिखे गये पत्रों में मारवाड़ी भाषा तथा पत्र-लेखन की प्राचीनशैली की छटा दृष्टिगत होती है । इस संग्रह में २२१ पत्र संकलित हैं जिसमें भारतीय दम्पति के पारस्परिक प्रेम की सुन्दर झांकी मिलती है ।

"पत्र-व्यवहार" के पांचवें भाग में सेठ जी का अपने परिवार के सदस्यों से हुआ पत्र-व्यवहार संकलित है । इन पत्रों में सेठ जी के विविध पारिवारिक रूपों का दिग्दर्शन होता है । इस पुस्तक में २०० म पत्रों का संकलन है । इन पत्रों में देश के अनेक महापुरुषों तथा स्वाधीनता -संग्राम की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख मिलता है । अतः इनका सार्वजनिक महत्त्व भी है । बजाज-परिवार को सम्पन्न और उन्नत बनाने में सेठ जी कितने प्रयत्नशील थे, इसका प्रमाण इन पत्रों में मिलता है ।

"पत्र-व्यवहार" के छठे, सातवें और आठवें भागों में प्रकाशित पत्रों का सम्बन्ध विभिन्न राजनैतिक गतिविधियों तथा आर्थिक-सामाजिक समस्याओं से है । इन संग्रहों में प्रकाशित अधिकतर पत्र अंग्रेजी में हैं । ये पत्र सेठ जी की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और रचनात्मक प्रवृत्तियों के

परिचायक हैं । इन पत्रों से ज्ञात होता है कि सेठ जी एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ, संनिष्ठ समाज-सेवी, कुशल व्यापारी और सफल प्रबन्धक थे ।

पत्रों में प्रतिबिम्बित सेठ जी का व्यक्तित्व :

सेठ जमनालाल बजाज महात्मा गांधी के भक्तों-शिष्यों में अन्यतम थे । वे एक प्रकार से उनके परिवार के सदस्य ही थे । बापू ने उनको अपने पांचवें पुत्र के रूप में स्वीकार किया था । अत: उनका जीवन और व्यक्तित्व पूर्णत: गांधीवादी आदर्शों के अनुरूप था ।

(क) जीवनी-सूत्र :

सेठ जी से सम्बन्धित तथा उनके द्वारा लिखित पत्रों में उनके जीवनी-विषयक अनेक तथ्य प्राप्त होते हैं । जैसे, श्री किशोरलाल मशरूवाला ने उनके नाम २०-६-१९३९ को जो पत्र लिख भेजा था, उसमें बच्छराज सेठ द्वारा जमनालाल जी को गोद लिये जाने का उल्लेख हुआ है ।[१] इसी प्रकार सेठ जी ने अपने पुत्र कमलनयन को अपने बचपन के बारे में सूचित करते हुए एक पत्र में लिखा है-

"मेरा बालकपन से लाड़-चाव के कारण शरीर स्थूल व आलसी था, परंतु मैंने हमेशा पूरा उद्योग करके बालकपन से ही जवाबदारी का जीवन बिताने की कोशिश रखी, उसका मुझे अब प्रत्यक्ष लाभ व सुख मिल रहा है ।"[२]

इस प्रकार पत्रों में कई स्थानों पर सेठ जी की जीवन-रेखाएं उभरकर सामने आती हैं ।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

सेठ जी के चरित्र की प्राय: सभी बातें बापू के नाम उनके ४-११-१९३८ को लिखे पत्र में प्रकट हो गयी है, तथापि विभिन्न व्यक्तियों को लिखे पत्रों में उनके चरित्र के अनेक पक्ष उजागर होते हैं ।

१ - व्यवहार-कुशलता :

सेठ जी प्रखर बुद्धिशाली और अत्यन्त व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे । उनकी व्यवहार-कुशलता परिचय हमें पत्रों में स्थान-स्थान पर मिलता है ।

१ "पत्रव्यवहार-भाग-३" (१९६०), पृ० ५६ । २ "पत्र-व्यवहार-भाग-५ (१९६४) पृ०-२६-२७ ।

रचनात्मक और देशी रियासतों के कार्यकर्ताओं को जिस प्रकार वे सलाह-सूचना देते हैं, उसमें उनकी व्यवहार-कुशलता स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष होती है । इस सम्बन्ध में श्री हरिभाऊ उपाध्याय को "बिजौलिया-सत्याग्रह" के बारे में उनकी निम्नलिखित सम्मति दृष्टव्य है -

"- - - मेरी यह भी राय है कि सत्याग्रह शुरू करने में जल्दी से काम लिया गया है । आशा है प्रचार-कार्य का मुख्य खयाल बाहर के आन्दोलन के साथ-साथ या उससे ज्यादा सत्याग्रहियों को मजबूत व उत्साहित करने और वे ज्यादा संख्या में तैयार हों, उस तरफ लगाने का र रहेगा, तो ठीक होगा ।"[1]

२ - स्पष्टवादिता :

महात्मा जी के शिष्य-पुत्र होने के कारण सेठ जी सत्यभाषी और सत्यवादी थे । विभिन्न विषयों पर वे अपना मत स्पष्ट शब्दों में व्यक्त कर देते थे । श्री घनश्यामदास को सीकरी आन्दोलन के सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्ट लिखा था :

"सीकर के आन्दोलन में सीकर की प्रजा के हिस्से में काफी दोष आता है । मैंने यह बात जाहिर तौर पर भी कही है । परन्तु जयपुर के अधिकारियों ने एक के बाद एक दीगर जो गलतियां की हैं वे गम्भीर रूप की हैं ।"[2]

इससे प्रकट होता है कि सेठ जी अपना मन स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करने के पक्षपाती थे ।

३ - निश्छलता :

निश्छलता या निष्कपटता सेठ जी के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता थी उ उन्होंने अपने दोषों को छिपाने की कभी कोशिश नहीं की । जानकीदेवी के नाम एक पत्र में अपने संकोचशील स्वभाव के विषय में उन्होंने लिखा है :-

"- - - तुम्हारे लिए मेरे हृदय में भक्ति व पूजा का भाव रहता है, परन्तु मेरी ओर से व्यवहार में वह पूरी तरह प्रकट नहीं हो

---

१. "पत्रव्यवहार भाग-२" (१९५८), पृ० २८ । २ "पत्र-व्यवहार भाग-१ (१९५८) पृ० ८३ ।

पाता है । यह देखकर कईबार दुःख और लज्जा का अनुभव करता हूं ।"[1]

सेठ जी की निश्छलता का सुन्दर परिचय हमें महात्मा जी को लिखे उनके ४-११-१९३८ के पत्र में मिलता है । इस पत्र के कुछ अंश इस प्रकार है :-

पूज्य बापूजी,

आज मिती व तारीख के हिसाब से मुझे ४९ वर्ष पूरे हुए हैं । पचासवां वर्ष चालू हुआ है । आपका आशीर्वाद तो सदैव ही रहता है, परन्तु मैं जब विचार करता हूं तो मुझे इन दो-अढ़ाई वर्षों में से ऐसा साफ दिखाई देता है कि मैं आपके आशीर्वाद का पात्र नहीं हूं । - - - मेरी कमजोरी मुझे इस प्रकार दिखाई दे रही है । अहिंसा व सत्य का आचरण कम होता दिखाई दे रहा है । डर है कि कहीं इस पर से श्रद्धा भी कम न हो जाय । इसी कारण असहनशीलता भी बढ़ रही है । क्रोध की मात्रा भी बढ़ती जा रही है । कामवासना बढ़ती हुई मालूम हो रही है । लोभ की मात्रा भी । इतने सब दुर्गुण या कमजोरी जो मनुष्य अपने में बढ़ती हुई देख रहा है फिर उसे जीने का मोह कैसे रह सकता है ?[2]

इस पत्र में सेठ जी का सम्पूर्ण चरित्र प्रतिबिम्बित है ।

(ग) दृष्टिकोण :

जैसा कि हम कह चुके हैं, प्रारम्भ से ही सेठ जी के जीवन में सेवा-भाव विद्यमान था, लेकिन महात्मा जी के सम्पर्क में आने के बाद उनकी प्रवृत्तियों और सेवाओं का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया था । इसके साथ ही उनके दृष्टिकोण में भी व्यापकता आ गयी थी । बापू की सादगी, साधना, ज्ञानोपासना, तपस्या आदि से वे बहुत प्रभावित हुए थे । उन्होंने भी ज्ञान और तपस्या को अपना जीवनादर्श बना लिया था । अपने पुत्र कमलनयन को ज्ञान और तपस्या का महत्त्व समझाते हुए उन्होंने एक पत्र में लिखा है -

"शिक्षा चाहे कितनी ही गहन व व्यापक क्यों न हो, उसको ग्रहण करने का कोई अर्थ नहीं यदि वह सही मार्गदर्शन न करे और जीवनके

---

१ "पत्र-व्यवहार भाग-४ (१९६३), पृ० ६१-६२ ।

२ "बापू के पत्र: बजाज परिवार के नाम" (१९६६), पृ० १५८-५९ ।

वास्तविक अर्थ को समझने में सहायक न हो । एक बात और याद रखने को कहूंगा - और वह यह कि ज्ञान-प्राप्ति का कोई निश्चित राज-मार्ग नहीं होता । ज्ञान-प्राप्ति के लिए तो व्यक्ति को 'तपस्या' करनी पड़ती है ।'[1]

इससे स्पष्ट है कि सेठ जी तप: पूत जीवन में विश्वास रखते थे । इस दृष्टि से वे महात्माजी के सच्चे पुत्र थे । उनके उच्च आदर्श को लक्षित कर महात्मा जी ने उनके नाम एक पत्र में कहा था कि -' तुम पांचवें पुत्र बने ही हो । किन्तु मैं योग्य पिता बनने का प्रयत्न कर रहा हूं ।'[2] नि:सन्देह सेठ जी का पत्र-साहित्य हमारे सम्मुख तप और त्याग का महान् आदर्श प्रस्तुत करता है ।

४ - आचार्य विनोबा भावे (१८९५ ई०)

महात्मा गांधी के आदर्शों को व्यावहारिक जीवन में पूर्णत: कार्यान्वित करने का श्रेय आचार्य विनोबाभावे को ही है । पंडित जवाहरलाल नहेरू यदि महात्मा गांधी के राजनैतिक उत्तराधिकारी थे, तो विनोबा जी उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी हैं ।

विनोबा जी का पत्र-साहित्य :

विनोबा जी बहुभाषाविद् और बहुश्रुत हैं । उनकी मातृभाषा मराठी होते हुए भी हिन्दी पर उनकी अच्छी पकड़ है । महात्मा गांधी की तरह उनके दैनिक कार्यक्रम में भी पत्रोत्तर देने का समय नियत रहता है । उनके पत्र बड़े रोचक और उत्प्रेरक हैं । बजाज-परिवार के नाम लिखे उनके पत्रों का एक संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है । इसके अतिरिक्त पं० वियोगी हरि द्वारा सम्पादित 'बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र ' शीर्षक पत्र-संग्रह में भी हरि जी के नाम उनके ६ प्रेरणादायक पत्र संकलित हैं ।

बजाज-परिवार के साथ महात्मा गांधी के समान आचार्य भावे का भी घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । सेठ जमनालाल बजाज महात्मा गांधी को पिता और आचार्य भावे को गुरु मानते थे । श्री रामकृष्ण बजाज

१' पत्र-व्यवहार भाग-५' (१९६४), पृ० २८ ।

२' बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम' , पृ० २७ ।

द्वारा सम्पादित "विनोबा के पत्र" शीर्षक संग्रह में बजाज-परिवार के नाम लिखे विनोबा जी के १७१ पत्र संकलित हैं । इस पुस्तक का शीर्षक "विनोबा के पत्र" है, किन्तु इसमें विनोबा जी से सम्बन्धित सेठ जमनालाल बजाज की डायरी के कुछ अंश तथा बजाज-परिवार के छोटे-बड़े सदस्यों द्वारा लिखित विनोबा जी से सम्बन्धित संस्मरण भी प्रकाशित हैं । इस प्रकार पुस्तक तीन खण्डों में विभक्त है- १ पत्र-व्यवहार, २- डायरी के अंश और ३-संस्मरण । पुस्तक के परिशिष्ट में कुछ छूटे हुए पत्र, सेठ जमनालाल बजाज के जीवन से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण तिथियां और संस्मरण लेखकों का परिचय दिया गया है । "पत्र-व्यवहार" शीर्षक खण्ड में जमनालाल जी और जानकीदेवी बजाज के अतिरिक्त राधाकृष्ण बजाज, अनसूया बजाज, कमलनयन बजाज, श्रीमन्नारायण, मदालसा अग्रवाल, उमा अग्रवाल आदि के नाम विनोबा जी के पत्र संकलित हैं । इन पत्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि किस प्रकार सेठ जमनालाल जी अपने परिवार के लोगों को विनोबा जी के सम्पर्क में लाकर उनका मार्गदर्शन प्राप्त कराते रहे और उनकी शिक्षा में नवीन चेतना तथा नवीन प्रेरणा लाने का प्रयत्न करते रहे । प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका श्री शिवाजी भावे ने लिखी है जिसमें इस त्रिदलस्वरूप पुस्तक का सुन्दर परिचय देकर उसके महत्व पर प्रकाश डाला गया है । इस प्रकार आचार्य विनोबा जी के व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन को समझने के लिए प्रस्तुत पुस्तक में संकलित पत्र अत्यन्त उपयोगी हैं ।

पत्रों में प्रतिबिम्बित विनोबा जी का व्यक्तित्व :

विनोबा जी भारतीय संत-परम्परा की अविच्छिन्न कड़ी है । उनके पत्रों में उनके संत-स्वभाव की स्पष्ट झलक मिलती है ।

(क) जीवनी-सूत्र :

विनोबा जी ने अपने पत्रों में प्रसंगत: अपने बचपन, अपनी दिनचर्या, अपने प्रवास आदि की चर्चा भी की है । ३-४-१९३८ को मदालसा अग्रवाल के नाम लिखित पत्र में अपने बचपन के बारे में उन्होंने लिखा है:-

[illegible] [illegible] " [illegible], [illegible] [illegible] ।

"- - - बचपन में मैं कभी भी किसीकी परवा नहीं करता था । आज भी करीब-करीब वैसा ही हूँ । मेरी मां ईश्वरनिष्ठ थी, इसलिए सेवा करती थी, पर अति चिन्ता नहीं करती थी । मुझ पर उसका विश्वास भी असाधारण था ।"[1]

इसी प्रकार जमनालाल बजाज को लिखे एक पत्र में अपने "तकली-प्रेम" का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है-

"तकली कातने में मुझे ऐसी अनोखी स्फूर्ति और शांति मालूम होती है कि मेरे मानसिक शब्दकोष में माता, गीता और तकली ये तीन शब्द अक्षरश: समानार्थक बन गये हैं । "आई" (मां) इस शब्द में मेरे घर की सारी कमाई संचित हो जाती है । "गीता" शब्द में, वेदों से लेकर संत-परम्परा तक जितना अध्ययन किया, वह सब आ जाता है । और "तकली" में बापू-जैसों की संगति का सार उतर आता है ।"[2] सेठ जी के नाम २८-२-१९३५ को लिखित पत्र में उन्होंने अपनी दिनचर्या का जो विवरण किया है, वह अत्यन्त रोचक है ।[3]

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

विनोबा जी की चारित्रिक विशेषताओं के विषय में महात्मा गांधी ने लिखा है -" श्री विनोबा भावे कौन हैं ? मैंने उन्हें ही सत्याग्रह के लिए क्यों चुना ? और किसीको क्यों नहीं ? मेरे हिन्दुस्तान लौटने पर सन् १९१६ में उन्होंने कालिज छोड़ा था । वह संस्कृत के पंडित थे ।- - - उनकी स्मरण शक्ति आश्चर्यजनक है । वह स्वभाव से ही अध्ययनशील हैं । पर अपने समय का ज्यादा से ज्यादा हिस्सा वह कातने में ही लगाते हैं और उसमें ऐसे निष्णात हो गये हैं कि बहुत ही कम लोग उनकी तुलना में रखे जा सकते हैं । उनका विश्वास है कि व्यापक कताई को सारे कार्यक्रम का केन्द्र बनाने से ही गांवों की गरीबी दूर हो सकती है ।[4]

विनोबा जी के चरित्र की ये सभी विशेषताएं उनके पत्रों में प्रतिबिम्बित हैं ।

---

१. विनोबा के पत्र, पृ० १०० ।
२ -वही-, पृ० ११ ।
३ -वही-, पृ० १४-१५ ।
४ "गांधी साहित्य- ७ : मेरे समकालीन" (१९६८), पृ० ५१८ ।

१ - अध्ययनशीलता :

अध्ययनशीलता विनोबा जी के व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण - विशेषता है । सेठ जमनालाल जी के नाम लिखित पूर्वोक्त पत्र में उन्होंने अपनी दिनचर्या का जो संक्षिप्त सार लिख भेजा है उसे देखने से पता चलता है, कि वे रोज़ डेढ़ घण्टे तक नियमित लेखन-वाचन करते हैं । उनके पत्रों में तुकाराम ज्ञानदेव, रवीन्द्रनाथ, भगवान बुद्ध आदि के जो उद्धरण मिलते हैं, उन से भी उनकी अध्ययनशीलता तथा अद्भुत स्मरण शक्ति का परिचय मिलता है । मदालसा अग्रवाल को प्रेषित एक पत्र में स्वाध्याय का महत्व बतलाते हुए वे लिखते हैं :-

" व्याकरण थोड़ा-थोड़ा होने से भी चलेगा, पर वह रोज होना चाहिए । भगवान बुद्ध का एक श्लोक है :-

' असज्फाय मला मंता
अनुट्ठान मला घरा ।'

जैसे घर रोज़ न झाड़ने से मलिन होता है, वैसे ही स्वाध्याय न करने से मंत्र मलिन होते हैं । अध्ययन को रोज़ ताजा करते रहना चाहिए ।"[1]

२ - सेवा-भावना :

विनोबा जी एक सच्चे समाज-सेवी हैं । अपने भूदान-यज्ञ के कार्यक्रम से उन्होंने अनेक गरीबों की सेवासहायता की है । दीन, दु:खी, पीड़ित, रोगी आदि के प्रति उनके मन में कितनी सहानुभूति थी, इसका संकेत हमें उनके १६-६-३२ को लिखे गए निम्नांकित पत्रांश में मिलता है । यह पत्र उन्होंने मदालसा अग्रवाल को भेजा है । देखिए :-

" - - - अतिथि की भांति दीन, दुखी, पीड़ित, रोगी इत्यादि की सेवा करना भी समाज-पूजा का ही अंग है । दरिद्रनारायण भी महान देव ही है । उसका हम पर जो उपकार है, वह कभी भी अदा होनेवाला नहीं है ।"[2]

---

१ "विनोबा के पत्र" (१६६२), पृ० ६२ ।
२ "विनोबा के पत्र" (१६६२), पृ० ६६ ।

महात्मा गांधी की तरह विनोबा जी भी हरिजन-सेवा को समाज-पूजा का अंग मानते हैं । हरिजनों की सहायता के लिए उन्हों ने अथक परिश्रम किया है । इस सम्बन्ध में पं० वियोगी हरि के नाम ५ नवम्बर १९५१ को लिखे पत्र का अंश यहां हम उद्धृत करना चाहते हैं -

" मैं आजकल भूमिदान-यज्ञ में लग गया हूं, लेकिन उसमें भी हरिजनों को नहीं भूला हूं । भूल भी कैसे सकता हूं, जब कि मैं खुद अपनी इच्छा से और कामों से हरिजन बन गया हूं ।"[1]

इससे स्पष्ट है कि दीन-हीनों की सेवा विनोबा जी के जीवन का मूल मंत्र है ।

३ - आस्तिकता :

विनोबा जी परम आस्तिक हैं । ईश्वर में उनकी अपार आस्था है । वे मानते हैं कि उनका जीवन ईश्वर की इच्छा के अनुसार चलता है । मदालसा अग्रवाल को उन्होंने स्पष्ट लिखा है -

" - - - ईश्वर जैसे नचायेगा वैसे मैं नाचूंगा । काम मेरा नहीं, उसका है । वह मुझे घुमा रहा है । इसलिए घूम रहा हूं ।"[2]

४ - निर्भयता :

ईश्वर में अपार आस्था होने के कारण विनोबा जी सभी प्रकार के भय से मुक्त हो गये हैं । वैसे वे बचपन से ही निर्भीक थे, किन्तु स्वाध्याय और चिन्तन-मनन के कारण अब वे निर्लिप्त होकर सर्वथा, निर्भय बन गये । मदालसा अग्रवाल को निर्भयता का सबक सिखाने के लिए १४-९-१९४४ के पत्र में एक तामिल कविता का सन्दर्भ देते हुए वे लिखते हैं:-

" हाल ही में तामिल की एक सुंदर कविता मेरे पढ़ने में आई, उसमें कहा है :-

"सारी दुनिया विरोध में खड़ी हो जाय । चित्त की सारी आकांक्षाएं निष्फल हो जायं । चाहे माथे पर आसमान फट पड़े । भय

---

१ "बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र" (१९६०), पृ० ६०

२ "विनोबा के पत्र", पृ० १२० ।

नहीं है । भय नहीं । भय नहीं है ।' - - - यही मेरा भी अनुभव है और अनेकों का है ।'[1]

(ग) दृष्टिकोण :

विनोबा जी महात्मा गांधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी हैं । वे आध्यात्मिक दृष्टि से जीवन व्यतीत करते हैं और अपने अनुयायियों को यही दृष्टिकोण अपनाने की सलाह देते हैं । उदाहरणार्थ अनसूया - बजाज को लिखे उनके १५-३-१६६० के पत्र का यह अंश देखिए -

'- - - आत्मा अखंड है । अनेक देह आते-जाते हैं । देह में बचपन, जवानी, बुढ़ापा और उसमें अनेक सुख और अनेक दु:ख, यह चक्कर चलता ही रहता है । उसमें जो ईश्वर पर श्रद्धा रखकर चित्त को शांत रखता है, वह भक्त ईश्वर का प्यारा होता है ।'[2]

इस प्रकार विनोबाजी के पत्रों में उनका संत स्वभाव सर्वत्र प्रतिबिम्बित है । आध्यात्मिक और साहित्यिक दोनों ही दृष्टियों से उनके पत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं ।

निष्कर्ष :

इस प्रकार साहित्यिक और साहित्येत्तर क्षेत्रों के प्रमुख पत्र-लेखकों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि युग-विधायक साहित्यकारों तथा महापुरुषों के पत्र उनके विचारों एवं मनोभावों के निर्मल दर्पण हैं । इन पत्रों में हमें उन आदर्शों और आकांक्षाओं की झांकी मिलती है जो कि लेखक के आधार-स्तम्भ हैं और जिनके अध्ययन और अनुशीलन से हम जीवन का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं । यहां जिन पत्र-लेखकों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, वे सभी अपने क्षेत्र के लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति हैं, पत्र-लेखन में उनकी गहरी रूचि है और अपने पत्रों से उन्होंने अनेक व्यक्तियों को प्रेरित-प्रोत्साहित किया है । इन पत्र-लेखकों के कलात्मक एवं गरिमामय व्यक्तित्व के कारण ही उनके वैयक्तिक पत्र प्रकाश में आये हैं और साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन गये हैं ।

---

१ 'विनोबा के पत्र' (१६६२), पृ० १०२ ।

२ -वही-, पृ० ४६ ।